ॐ

गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला

(स्थालीपाककर्मकदम्बकम्)

[हिन्दी अनुवादसहित]



विद्यामार्त्तण्ड पं० सीताराम शास्त्री

संस्थापक ब्रह्मचर्याश्रम,

भिवानी

गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला

(स्थालीपाककर्मकदम्बकम्)

[हिन्दी अनुवादसहित]



विद्यामार्त्तण्ड पं० सीताराम शास्त्री

संस्थापक ब्रह्मचर्याश्रम

भिवानी

मूल्य ।=) पाँच आना

प्रथम संस्करण १००० सं० १९९३ वि०

द्वितीय संस्करण १००० सं० १९९४ वि०

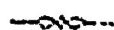
मुद्रक तथा प्रकाशक घनश्यामदास जालान गीताप्रेस, गोरखपुर

संस्कृतभागस्य

विषय-सूची



हिन्दी-भाग





हमारे देशमें बहुत कालसे ही श्रौत-स्मार्त कर्मोंका लोप हो जानेसे एक प्रकारसे वैदिक कर्मोंसे हमारा सम्बन्ध ही छूट-सा गया है, जिसके कारण हमारे देशके पण्डित भी संस्कृतविद्यामें व्याकरण, न्याय, वेदान्त, सांख्यशास्त्रतक ही पहुँचते हैं। वेदों और कल्पसूत्र आदि जो विशेषरूपसे वेदोंसे ही सम्बन्ध रखनेवाले वेदाङ्ग हैं उनसे उनका ज्ञानकृत कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। एवं गृह्यसूत्रोंके सम्बन्धकी भी यही दशा है। केवल उपनयनपद्धति और विवाहपद्धति जो पूर्वाचार्योंने लिख दी हैं जिनके अभावमें हम गृहस्थ भी नहीं बन सकते थे या ब्राह्मण आदि वर्णका सर्वथा ही अभिमान नहीं रख सकते थे उनके अतिरिक्त और किसी अंशका भी परिचय नहीं रखते। वास्तवमें अब कोई देशमें ऐसा उपाय भी नहीं रहा, न देशमें वे कर्म-अनुष्ठान किये जाते हैं और न पढ़े जाते हैं। अतः देखें और सुनें भी कहाँसे ? इससे यह बड़ी चिन्ताका विषय है। यदि श्रौत और स्मार्त कर्मोंकी ओर हम अब भी ध्यान नहीं देंगे तो कुछ कालमें हमको यह भी खयाल नहीं रहेगा कि हम किस कारण अनादिकालसे चारों वर्ण प्रसिद्ध हैं। इससे बहुत आवश्यक हो गया है कि हम उधर अपना ध्यान ले जायँ और छूटे हुए अपने वैदिक धर्मको शीघ्रतासे पकड़ लें। इसी उद्देश्यको लेकर हमने स्मार्त कर्मोंकी पद्धतियोंका यह संग्रह प्रकाशित किया है। इसके देखनेसे प्रतीत होगा कि इसमें कोई कठिनाई नहीं है कि जो हमको इस समयमें भी उन कर्मोंके जानने और करनेमें रोक दे।

आवसथ्य अग्निका स्थापन करने और उसमें नित्य होम करनेमें कोई विशेष कष्ट नहीं है। सारे जन्मके लिये दो घंटेमें अग्निका स्थापन हो सकता है और सायं-प्रातः-होममें पाँच मिनटसे अधिक समय नहीं लगता।

अब भी पढ़े-लिखे साधारण लोग पूजा-पाठमें कई-कई घंटे नित्य लगाते हैं, फिर उनको एक पाँच मिनटके नित्य-होममें क्या आपत्ति होगी?

जो गृह्य अग्निके नैमित्तिक कर्म हैं वे भी जब करने होते हैं बहुत थोड़े-थोड़े समयके कर्म हैं। यह सब आपको पद्धतियोंके देखनेसे विदित हो जायगा। आशा है धार्मिक वर्णाश्रमी लोग इधर बहुत ही शीघ्र ध्यान देंगे और अपने भूले हुए पुरातन धर्मपर अधिकार कर लेंगे।

हाँ, एक छोटा-सा प्रश्न और है जो कहीं-कहीं श्रौत-स्मार्त कार्यों-में प्रवेश करनेके लिये हमारे लिये रुकावट डालता है। वह है मांसका प्रकरण। प्रयोजन यह है कि किसी-किसी कर्ममें मांसका भी उपयोग है। उसके विना वह सम्पन्न नहीं होता। और हमारे गौड़ सम्प्रदायमें मांसका त्याग है, इसलिये हम उन मांससाध्य कर्मोंको नहीं कर सकते?

इसका उत्तर यह है कि हमारे पूर्वज जो ऋषि-महर्षि हुए हैं, वे योगी और त्रिकालदर्शी थे। उन्होंने भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब कालोंकी आलोचना प्रथम ही कर दी थी। इससे हमको उनकी व्यवस्था सुन लेनी चाहिये। उसीसे हमारे सब कृत्य सफल हो सकते हैं। हमको किसी विचारणीय वस्तुके लिये वे दरिद्र नहीं छोड़ गये हैं। इसलिये हम अपनी कपोलकल्पित युक्तियोंको न देकर उनके वचन ही सुना देते हैं। उसीसे हमारे पाठक सन्तुष्ट हो जायँगे।

देखिये पारस्करगृह्यसूत्र काण्ड ३ कं० २ के भाष्यके अन्तमें हरिहर स्मृतिवाक्योंको उद्धृत करते हैं—

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु। (इति स्मरणात्)

तथा—

देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमाग्रहः ।
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥
समुद्रयानस्वीकारः कमण्डलुविधारणम् ।
महाप्रस्थानगमनं गोपशुश्च सुराग्रहः ॥
अग्निहोत्रहवण्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः ।
असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ॥
वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसङ्कोचनन्तथा ।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ॥
प्रायश्चित्ताभिधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् ।
संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः ॥
दत्तौरसेतरेषान्तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ।
शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणन्तथा ॥
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ।
कलौ युगे त्विमान् धर्मान् वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥

(इति स्मरणात्)

जो धर्म स्वर्गका विरोधी हो तथा लोकविरुद्ध हो, वैसे धर्मको भी आचरण न करे ।

और—

(१) देवरसे पुत्र जनना (२) वानप्रस्थ आश्रमका ग्रहण करना (३) दी हुई अक्षतयोनि कन्याका दूसरे वरको देना (४) समुद्रयान (जहाज) से यात्रा करना (५) कमण्डलुका धारण (संन्यास लेना) (६) महाप्रस्थानका गमन (पर्वतशिखरसे गिरकर प्राणत्याग करना आदि) (७) गोपशु (८) मद्यका ग्रहण (९) अग्निहोत्र-हवणीका चाटना (१०) चाटी हुई अग्निहोत्रहवणीका फिर चाटना (११) तीन वर्णोंमें दूसरे वर्णकी कन्याओंमें विवाह (१२) सदाचार

और स्वाध्यायके कारण प्रायश्चित्तको घटाना (सूतक पातकका घटाना) (१३) अस्थि-सञ्चयके पश्चात् अङ्गका स्पर्श करना (१४) ब्राह्मणको मरणपर्यन्तका प्रायश्चित्त बताना (१५) पापोंमें संसर्गका दोष (१६) मधुपर्कपूजामें पशुका वध (१७) दत्तक और औरससे अन्यको पुत्र बताना (१८) ब्राह्मणोंको शामित्र कर्म (यज्ञमें पशुका आलम्भ) (१९) सोमलताका बेचना (२०) जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) (२१) नरमेध और अश्वमेध इन इक्कीस धर्मोंको कलियुगमें ऋषियोंने वर्जित किया है ।

एवम्—

> अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।
> देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥

इस पाराशरस्मृतिमें भी पाँच कर्मोंको वर्जित किया है ।

(१) अश्वालम्भ (२) गवालम्भ (३) संन्यास (४) पलपैतृक (मांससाध्य पितृकर्म) और (५) देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति ।

यहाँपर भी गृह्यकर्मोंमें दूसरी अष्टका और अन्वष्टकाकर्म ऐसे हैं जिनमें मांसका और सुराका प्रयोजन भी सूत्रमें कहा है, किन्तु दोनों ही कर्म कलियुगमें वर्जित हैं अतः हमने भी ऐसे स्थानोंमें मांसके स्थानमें शाक और सुराके स्थानमें दुग्धका उपयोग किया है । ऐसे प्रतिबन्धक कलियुगमें जहाँ कर्मोंमें आवें वहाँ ग्राह्य दूसरी वस्तुसे कर्मको साधन करना । इसमें कोई दोष नहीं । यही निर्णय यहाँका संक्षेपसे है ।

नीवीबन्धन—कर्मकाण्डमें बहुत स्थानोंमें नीवीबन्धन करनेका विधान आता है, उसके लिये बहुत सन्देह हो जाता है कि यह कैसे करना । इस विषयमें (पा० गृ० कां० १ कं० १२ पक्षादि कर्मप्रयोग [illegible] । भाष्य) ।

गदाधरभाष्यकारने बहुत ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे निरूपण किया है कि—

(१) कुशतिलसंयुक्तानां वस्त्रदशानां सव्यभागे परिहितवस्त्रेण संवेष्ट्यावगूहनमिति देवयाज्ञिकाः ॥

कुश और तिलोंको धोतीकी लाँग (कच्छ) जो दूसरी सामने लटकती रहती है उसके छीर (दशा) सहित कोनेमें बाँधकर बायीं ओरकी आँटमें खोंस ले—लपेटेसे अटका ले इसीका नाम नीवीबन्धन है। खोलनेकी विधि जहाँ आवे उसे वहाँसे खोल दे। और और भी जानने-के लिये वचन उद्धृत कर देते हैं—

(२) नीविं परिहितमध्येऽवगूहितवस्त्रमान्तं विस्रंस्येति नीविं विस्रंस्येति सूत्रव्याख्याने श्रीअनन्तयाज्ञिकाः।

(३) न नीविं कुरुत इत्येतद्व्याख्याने नीविः परिधानदार्ढ्यार्थं प्रदेशान्तरे प्रदेशान्तरावगूहनमित्युक्तं श्रीअनन्तैः।

(४) नीविं कुरुते सोमस्य नीविरित्यत्र च नीविरपवर्त्तिकेति कर्कादयः।

(५) सर्वसूत्रव्याख्यानावलोकने प्रदेशान्तरे प्रदेशान्तरावगूहन-मेवायाति।

(६) 'नीविवासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत्' इत्याश्वलायनः।

(७) वेदिश्रोणिसन्नहनावच्छादनवाक्यशेषो दक्षिणत इव हीयं नीविरिति।

(८) दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयमिति वृद्धयाज्ञ-वल्क्यः।

(९) 'नीविः कार्या दशाभिर्वामकुक्षौ कुशैः सह' इति यत्कात्या-यनवचनं तद्वृद्धिश्राद्धे—

(१०) 'पितॄणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके' इति स्मृत्यन्तरात् ।

(११) 'वामे दक्षिणे वा' इत्याचाराद्व्यवस्थेति प्रयोगपारिजाते ।

पृष्ठोदिविविधान—बहुत-से ऐसे कर्मकाण्डके श्रद्धालु हैं, जो गृह्य अग्निके रखनेमें असमर्थ हैं । क्योंकि यद्यपि उसके रखनेमें धनव्यय भी असह्य नहीं और न होम करनेमें समय ही कुछ लगता है, तथापि उसके नित्य रखने और उसके पास रहनेको ही असह्य कष्ट समझते और होम तथा अन्य गृह्यकर्मोंको भी करना चाहते हैं उनके सुभीतेके लिये पृष्ठोदिविविधानका प्रयोग यहाँ पद्धतियोंके संग्रहमें सम्मिलित कर दिया है, जिसके द्वारा नित्य नया अग्नि स्थापन करके उसमें गृह्याग्निके सब कर्मोंको कर सकते हैं । अतः जहाँतक हो कर्मकाण्डके श्रद्धालु मनुष्योंको इस संग्रहसे लाभ उठाना चाहिये ।

अग्निके पुनः स्थापनकी व्यवस्था—मनुष्यके शिरपर और भी बहुत-सी आवश्यकताएँ ऐसी आ उपस्थित होती हैं, जिनके कारण अग्निकी यथोक्त रक्षा भी छूट जाती है, तो उस समय मनुष्यको विधिके छूटनेकी बड़ी चिन्ता हो जाती है, उसके लिये इसी संग्रहमें पुनराधानके निमित्त बहुत स्पष्ट शब्दोंमें समझाये गये हैं, जिनके समझनेमें या उनकी व्यवस्थाके समझनेमें कोई कष्ट नहीं होगा । अतः ऐसी चिन्ताका निवारण भी इस संग्रहमें कर दिया गया है ।

अग्निके स्थापनमें धनकष्टका अभाव—अपने पिताके अकेला पुत्र हो, ऐसे त्रैवर्णिक पुरुषको विवाह करते ही अग्निस्थापन करनेमें कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं और इसी प्रकार अनेक भाइयोंको धनविभाग होते ही अग्निस्थापनका अधिकार है । यदि यथोक्त समयपर स्थापन नहीं कर सके तो प्रायश्चित्तकी आपत्ति होती है । उसमें मनुष्यकी शारीरिक

शक्ति तथा आर्थिक शक्ति दोनोंके अनुसार ही प्रायश्चित्त अनेक प्रकारसे बताये हैं जिससे जिसकी जैसी अवस्था हो उसके अनुसार ही प्रायश्चित्त करके अग्निस्थापन कर सकता है। प्रयोजन यह कि कोई ऐसी अवस्था नहीं कि मनुष्य स्वस्थ हो और अग्निस्थापन न कर सके। ऐसे प्रायश्चित्त और उनके संकल्प सब इस संग्रहमें संगृहीत हैं।

नित्यहोमका व्यय—नित्यहोममें दो आहुतियाँ सायंकालमें और दो आहुतियाँ प्रातःकालमें अग्निमें दी जाती हैं। यव, दही और चावल इन तीनों चीजोंमेंसे जो सायंकालमें मिले उसीसे सायं और प्रातः आहुतियाँ देनी चाहिये। एक आहुतिके द्रव्यका परिमाण अपने हाथकी अँगुलियोंके १२ पर्वों (पोरवों) पर जितना द्रव्य आ सके उतना ही द्रव्य एक आहुतिमें देना होता है। तौलमें यव या चावल अधिक-से-अधिक डेढ़ तोला होना चाहिये। मध्यम तोल एक तोला है। दोनों समयके लिये चार तोले जौ या चावल अथवा दहीसे इनमेंसे जो भी मिले उससे दोनों समयके हवनका निर्वाह हो सकता है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो द्रव्य होमके लिये सायंकालमें ले वही द्रव्य प्रातःकाल भी लिया जावे। क्योंकि सायंकाल और प्रातःकाल दोनों कालका होम एक दिनका पूरा होम होता है जिसका आरम्भ सायंकालहोम है और प्रातःकाल समाप्ति। इससे प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है कि गृह्य अग्निके नित्यहोममें क्या खर्च और क्या समय लगता है।

अग्निकी रक्षा—जिस अग्निका स्थापन विधिके अनुसार हो जाता है उसीको बराबर रखना पड़ता है। उसको बुझने नहीं देना चाहिये। अग्निकी रक्षाका प्रकार यह है कि अग्निके लिये एक गोल कुण्डके आकारका एक प्रादेश (१० अंगुल) ऊँचा मिट्टीसे स्थान बना लेना चाहिये। उसीमें नित्य अग्नि रहेगी। जब होम कर ले तब उस अग्निको उसी स्थानमें दो गोबरके छानोंसे ढककर ऊपरसे भस्मसे ढक दे। प्रातःकाल

उसको निकालकर समिधोंसे प्रदीप्त कर ले और उस प्रदीप्त अग्निमें इस संग्रहमें दी हुई नित्यहोमकी पद्धतिके अनुसार दो आहुतियाँ देकर पूर्वोक्त प्रकारसे उसे फिर ढक दे। बस, यही प्रकार अग्निके रखनेका है। गोबरके उपले तैयार रखने चाहिये। प्रतिदिनके लिये चार उपले रखना आवश्यक है।

स्विष्टकृत् होम और संस्रवप्राशन—

'अन्वारब्ध[1] आघारावाज्यभागौ[2] महाव्याहृतयः[3] सर्वप्रायश्चित्तं[4] प्राजापत्य[1]ꣳस्विष्टकृच्च' (१४) (पा० गृ० कां० १ कं० ५ सू० ३)

'एतन्नित्यꣳसर्वत्र' (पा० गृ० कां० १ कं० ५ सू० ४)

'प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः'।

(पा० गृ० कां० १ कं० ५ सू० ५) इति।

जहाँ कहीं भी होमके नामसे कर्म विहित है, वहाँ सभी कर्मोंमें चौदह आहुतियाँ अवश्य होती हैं। इनके विना कोई होम शास्त्रमें नहीं है। ये आहुतियाँ सब घृतसे ही होती हैं। किन्तु स्विष्टकृत्की आहुति जो इनमें अन्तिम है, वह प्रकृत कर्ममें यदि घृत ही एक हवि हो तो घृतसे ही होती है और यदि घृतके अतिरिक्त और भी हवि विहित हो तो घृतके साथ वह भी मिलाकर स्विष्टकृत् आहुति होती है। ऐसी अवस्थामें इस आहुतिका स्थान भी अन्तिमको छोड़कर महाव्याहृतियोंसे पूर्व हो जाता है। अर्थात् २ आघार और २ आज्यभाग होकर स्विष्टकृत् होता है। शेष नव (९) आहुतियाँ विशेष आहुतियोंके पश्चात् होतीं हैं। (अर्थात् अन्य हवि होगा तो विशेष आहुतियाँ अवश्य होंगी।) जैसे—३ महाव्याहृतियाँ ५ सर्वप्रायश्चित्त और १ प्राजापत्य। इस प्रकार चाहे जितना भी बड़ा या छोटा होम हो, वहाँ सब स्थानोंमें इन चौदह आहुतियोंका निर्वाह करना होता है। क्योंकि ये आहुतियाँ नित्य हैं।

होमके अन्तमें संस्रवप्राशन कार्य होता है। अर्थात् इन चौदह आहुतियोंमें प्रत्येक आहुति छोड़नेके पश्चात् स्रुवसे कुछ अंश एक जलके पात्रमें छोड़ते रहते हैं। उसीमेंसे अनामिका अँगुलीसे कुछ अंश लेकर होम करनेवाला चाट लेता है। इसीका नाम संस्रवप्राशन है।

इस प्रकरणके बतानेका यहाँ एक विशेष कारण है। वह यह कि 'नवान्नप्राशन' कर्म गृह्य अग्निवाले पुरुषको एक वर्षमें दो बार करना होता है। एक धानकी उत्पत्तिके समय शरद् ऋतुमें और दूसरा यवोंकी उत्पत्तिके समय वसन्त ऋतुमें।

इस नवान्नप्राशनकर्ममें घृतके अतिरिक्त वर्तमान समयके अन्नका चरुपाक भी होता है। इस कारण अन्तिम स्थान छोड़कर ५ वें स्थानमें आ जाता है और वह चरु और घृत दोनों द्रव्योंको मिलाकर होना चाहिये। किन्तु नवान्नप्राशन इस नामकरणके अनुसार संस्रवमें केवल अन्नका प्राशन किया हुआ न होगा। क्योंकि उसमें घृत भी सम्मिलित हो गया। इससे सूत्रकारने स्विष्टकृत्का रूपान्तर कर दिया है जिसके अनुसार एक मन्त्रसे पहले केवल घृतकी आहुति होती है और दूसरी आहुति केवल सामयिक अन्नके चरुसे और तीसरी आहुति फिर केवल घृतसे होती है। संस्रव छोड़नेके लिये यहाँ दो पात्र रख देने चाहिये। एकमें सब नित्य घृतकी आहुतियोंका संस्रव छोड़ा जायगा और दूसरेमें सामयिक चरुका। तीनों आहुतियाँ पृथक्-पृथक् मन्त्रोंसे होती हैं एवं चरुके प्राशनके मन्त्र अलग हैं। उनमें दो मन्त्र ऐसे हैं जो चरुसामान्य-के प्राशनमें विनियुक्त होते हैं और एक मन्त्र यवान्नप्राशनमें पृथक् विनियुक्त है। उसमें 'एतमुत्यं मधुना संयुतं यवम्' इस प्रकार प्रत्यक्ष यवका नाम लिया गया है। इसी कारण यह मन्त्र केवल यवके संस्रवमें ही विनियुक्त होता है।



मृतपत्नीकको अग्न्याधान

बहुत ऐसे धार्मिक पुरुष भी हैं जो पत्नीरहित होकर भी अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मोंमें रुचि रखते हैं। ऐसे एक-दो पुरुष हमको मिले भी हैं जिन्होंने पत्नीरहित होकर भी अग्निहोत्र लेनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु उस समय हमारी दृष्टिमें ऐसे वचन नहीं थे। अतएव हम उनको अग्निहोत्रकी अनुमति नहीं दे सके। सौभाग्यसे जब ऐसे विषयकी ओर विशेष ध्यान देनेका समय मिला तो ऐसे वचन भी सुलभ हो गये जिनके अनुसार विधुर पुरुष भी अग्नि रख सकता है और उसमें केवल दर्श-पौर्णमास तथा आग्रयण कर्म भी कर सकता है, किन्तु और सब कर्म नहीं।

वास्तवमें आजकलके मनुष्योंका प्रायः इतने कर्मोंसे अधिक कर्मोंमें साहस भी होना सम्भव नहीं है। अस्तु, पूर्वोक्त अवस्थावाले पुरुषोंकी इच्छापूर्तिके लिये हम उन प्रमाणोंका उद्धरण कर देते हैं। आशा है वैदिक कर्मोंके श्रद्धालु धार्मिकजन इस व्यवस्थासे लाभ उठा सकेंगे।

श्रौत अग्नि और गृह्य अग्नि

शास्त्रोंमें जहाँ अग्निहोत्र आदि कर्मोंकी एवं उनके अर्थ जो अग्निकी चर्चा आती है, वह श्रौत अग्नि और उसमें होनेवाले अग्निहोत्रकी ही आती है, गृह्याग्निको लौकिक अग्नि और उसे रखनेवालेको निरग्नि शब्दसे ही स्मरण किया है। अतः यह नहीं मान लेना चाहिये कि उन वचनोंमें अपत्नीकको श्रौत अग्निका ही अधिकार दिया है, स्मार्त्त अग्निका नहीं। क्योंकि 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' इस न्यायसे जो नियम श्रौत अग्निके लिये हैं वे ही सब प्रायः स्मार्त्त अग्निके हैं, तथा श्रौताग्निमान् पुरुषको भी स्मार्त्त कर्मोंके अर्थ स्मार्त्त अग्नि भी रखना आवश्यक होता है। अतएव श्रौत अग्निकी अनुमतिके साथ स्मार्त्त अग्निकी अनुमति भी अर्थाक्षिप्त हो जाती है। अन्यथा श्रौताग्निमान्के वैश्वदेवबलि

आदि स्मार्त्त कर्म सिद्ध न होंगे। इससे मानना चाहिये कि जो अनुमति अपत्नीकको श्रौत अग्निकी है वही स्मार्त्त अग्निकी भी है।

वाचस्पत्यकोशमें अपत्नीक शब्द

केचित् 'अपत्नीको मृतपत्नीकः' इत्याहुः। तस्याप्येकाकिन एवाधानं श्रूयते आश्वलायनब्राह्मणे।

कोई पण्डित अपत्नीक शब्दसे मृतपत्नीकको लेते हैं। उस अकेले-को भी आश्वलायन ब्राह्मणमें आधान श्रवणगोचर होता है।

'पत्न्यां मृतायामग्निभिर्दग्धायां पुनर्विवाहासम्भवे आत्मार्थ-मग्न्याधानमाहापस्तम्बः' 'दर्शपौर्णमासाग्रयणार्थं शेषाणि कर्माणि न भवन्ति।' इति।

पत्नीके मर जानेपर उसको अग्नियोंसे दग्ध कर देनेके पश्चात् फिर विवाहका सम्भव न हो तो अपने लिये अग्न्याधान कर ले, ऐसा आपस्तम्ब कहते हैं—'दर्श-पौर्णमास और आग्रयण कर्मके अर्थ अग्न्याधान करे, किन्तु उस अग्निमें शेष कर्म नहीं कर सकेगा। अन्य सब कर्मोंको पत्नीसहित कर सकता है।'

पत्नीकी मूर्तिसे अग्निहोत्र

पत्नीके अभावमें सुवर्णकी पत्नी रखकर वैदिक कर्म करे।

कर्मप्रदीपमें कात्यायन

मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्नीन् न हि त्यजेत्।
उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत्॥

भार्याके मर जानेपर भी वैदिक अग्नियोंका त्याग न करे। उपाधि (स्वर्णादिकी पत्नी) से भी उस कर्मको जीवनपर्यन्त करे। इत्यादि।

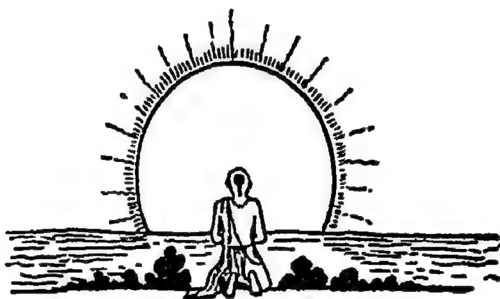
वाल्मीकिरामायणके वाक्य

काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायज्ञांश्च कर्मणि।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः॥
(वा० रा० उ० कां० ९१। २५)

लक्ष्मणके प्रति रामका वाक्य है कि—'भरत मेरी काञ्चनकी पत्नी और दीक्षायज्ञोंको आगे करके जावे।' अतएव पत्नीके अभावमें स्वर्णादिनिर्मित पत्नीसे भी वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान हो सकता है। जब कि शास्त्रसे सभी अवस्थाओंमें वैदिक कर्मोंके अधिकारकी व्यवस्था की है तो अधिकारियोंको उनके लाभसे न चूकना चाहिये।

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्॥
(वा० रा० उ० कां० ९९। ७)

'उन रामने सीताके सिवा दूसरी भार्याका स्वीकार नहीं किया। जो-जो यज्ञ करते थे सर्वत्र पत्नीके स्थानमें स्वर्णमयी सीता ही रही।'



संस्कृत भाग

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला



श्रीपारस्करगृह्यसूत्रप्रथमकाण्डिका

[संस्कृत]

आवसथ्याधानादिसर्वकर्मसाधारणः

होमोपक्रमविधिः

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म ॥ १ ॥ परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरूप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात् ॥२॥

स्रुवं प्रतप्य संमृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात् ॥३॥ आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात् ॥४॥ एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः ॥ ५ ॥ १ ॥

१ कुशैः परिसमूहनम् ।

२ गोमयोदकेनोपलेपनम् ।

३ स्फ्येन स्रुवेण वा उत्तरोत्तरं त्रिरुल्लेखनम् ।

४ उल्लेखनक्रमेण मृद उद्धरणम् ।

५ जलेनाभ्युक्षणम् ।

इति पञ्चभूसंस्काराः । ततः—

६ अग्नेरुपसमाधानम् ।

७ दक्षिणतो ब्रह्मासनास्तरणम् ।

८ प्रणीताप्रणयनम् ।

९ कुशैः परिस्तरणम् ।

१० यथाप्रयोजनं पात्राणामासादनम् ।

११ पवित्रयोः करणम् ।

१२ प्रोक्षणीनां संस्कारः ।

१३ आसादनक्रमेण पात्राणां प्रोक्षणम् ।

१४ आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः ।

१५ अग्नौ आज्याधिश्रयणम् ।

१६ उल्मुकस्य आज्यस्योपरि परिभ्रामणम् ॥ २ ॥

१७ स्रुवस्य त्रिः प्रतपनम् ।

१८ संमार्जनकुशैस्त्रिः,स्रुवस्य संमार्जनम् ।

१९ स्रुवस्याभ्युक्षणम् ।

२० स्रुवस्य पुनः प्रतपनम् ।

२१ स्रुवस्य दक्षिणतः कुशोपरि निधानम् ॥ ३ ॥

२२ आज्यस्योद्वासनम् ।

२३ आज्यस्योत्पवनम् ।

२४ आज्यस्यावेक्षणम् ।

२५ प्रोक्षणीनां पूर्ववत्संस्कारः ।

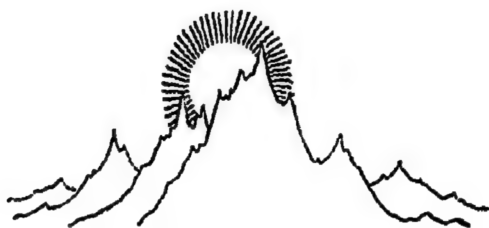
२६ वामेन पाणिना उपयमनकुशानामादानम् ।

२७ उत्थाय दक्षिणकरेण अग्नौ समिधां प्रक्षेपः ।

२८ अग्नेः पर्युक्षणम् ।

२९ अथ होमः ॥ ४ ॥

३० सर्वत्र होमे एष एव विधिः ॥ ५ ॥ १ ॥



आधानकालः

(१) आश्वलायनादीनां गृह्यकाराणां मते "वैवाहिकोऽग्निरेवौपासनाग्निः" ते हि विवाहहोममेव दाराग्न्योः संस्कारकं मन्यन्ते ।

अस्माकं तु—

(२) भ्रातृमतां विभक्तानामाधानेऽधिकारः ।

(३) अभ्रातृकस्य दारकालेऽधिकारः । स च चतुर्थीकर्मानन्तरं भवति । चतुर्थीकर्मणः प्राक् पत्न्या भार्यात्वस्यानुपपत्तेः । सभार्यस्य चाधानेऽधिकारात् । इति व्यवस्था ।

अथाग्न्याधानमुहूर्त्तः

तत्र—

(१) अयनम्—उत्तरायणम् । मकरादिषड्राशिसूर्यस्थित्युपलक्षिताः षण्मासाः ।

(२) नक्षत्राणि—कृत्तिका, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, ज्येष्ठा, पुष्यः ।

(३) तिथयः—रिक्ता(४, ९, १४) वर्जिताः ।

(४) वर्जिता ग्रहाणां स्थितिः—गुरुशुक्रयोरस्तत्वं वृद्धत्वं शिशुत्वं च, चन्द्रमङ्गलगुरुशुक्राणां नीचराशौ स्थितिः, शत्रुराशौ स्थितिश्च ग्रहान्तरैर्विजितत्वं चैतत्सर्वं वर्ज्यम् ।

अथ लग्नशुद्धिः

कर्कः, मकरः, मीनः, कुम्भः—एते राशयः एतेषां नवांशाश्च वर्ज्याः । एवं लग्ने चन्द्रो वर्ज्यः । तथा शुक्रोऽपि लग्ने वर्ज्यः । एवं सूर्यचन्द्रगुरुभौमेषु नवमपञ्चमस्थानस्थितेषु सत्सु बुधशुक्रशनिराहुकेतुषु च तृतीयैकादशषष्ठदशमस्थानेषु सत्सु, आधानकर्तुर्जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमे राशौ शुद्धे अग्न्याधानं कार्यम् ।

अथात्र यागकर्तृत्वयोगाः

(१) गुरुणाधिष्ठितो धनूराशिर्लग्ने स्यादित्येको योगः ।

(२) भौमो मेषराशिस्थः स्यादिति द्वितीयो योगः ।

(३) आधानलग्नस्थो भौमः, इति तृतीयः ।

(४) आधानलग्नात्सप्तमस्थानस्थो भौमः स्यादिति चतुर्थो योगः ।

(५) चन्द्रः षष्ठे वा, तृतीये वा, एकादशे वा स्थाने स्यादिति त्रयो योगाः ।

(६) सूर्यः षष्ठे वा, तृतीये वा, एकादशे वा स्थाने स्यादिति त्रयो योगाः ।

एवंविधे लग्ने कृताधानो यजमानो ध्रुवमग्निहोत्रकर्ता ज्योतिष्टोमादियागकर्ता च भवेत् ।

अत्रेयं व्यवस्था

(१) तत्र पाणिग्रहणकालस्य नियतत्वात्तत्क्षणादारभ्यमाणाग्न्याधानार्थं न मुहूर्तगवेषणा ।

(२) पुत्रादिभिः सह यस्मिन्काले विभागो जातः, तस्मिन्काले यथा कथञ्चिद्व्यतीपातभद्रादिदोषरहिते आधानं कार्यमेव । तदा उत्तरायणादिकालशुद्धेर्नापेक्षा ।

(३) यदि पाणिग्रहणकाले धनविभागकाले वा आधानं प्रतिबन्धकवशान्न कृतं तदा कालशुद्धिः पूर्वोक्तप्रकारेण कार्यैव ।

(४) अथैषां वर्णानां वसन्ताद्यृतवः सोमयागाद्यर्थं नियता एवोक्तास्तेषां यद्यप्युत्तरायणादिविचारो नास्ति, सम्भवव्यभिचाराभावात्, तथापि शुक्रास्तादिदोषनिवारणार्थं मुहूर्तो गवेष्य एव ।

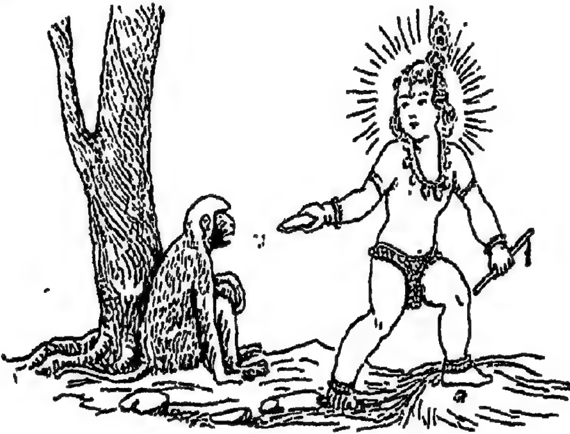
(५) येषां तु श्रद्धोदय एवाधानमिति पक्षस्तेषां सोमसाधनमेव श्रद्धोदय इति यथाकथञ्चित्पञ्चाङ्गशुद्धिं विधाय (विचार्य) नर्त्तुनक्षत्रादीनां प्रतीक्षा न वा वारादेः।

(६) "वाजपेयेन यजेत" इति वाजपेयादीनां यागविशेषाणां शरदाद्यृतुविशेषविहितानामपि सौम्यायनप्रतीक्षामकृत्वा शुक्रास्तादिदोषराहित्यं विचार्यम्।

तदयमत्र निर्णयः सम्पन्नः

(१) यत्र तु कालनियमेनाधानादि विहितं तदा न मुहूर्तविचारः।

(२) यदा तु कालनियमाभावस्तदा मुहूर्तो विचार्य एवेति॥



अग्न्याधाने मुख्यकालातिक्रमे प्रायश्चित्तम्

१–यावन्त्यब्दान्यतीतानि निरग्नेर्विप्रजन्मनः ।
तावन्ति कृच्छ्राणि चरेद्धोम्यं दद्याद् यथाविधि ॥

इति वचनादतिक्रान्तसंवत्सरसंख्यप्राजापत्यरूपं प्रायश्चित्तं मुख्यविधिना आचरेत् ।

अशक्तौ विकल्पाः

२–प्राजापत्यानुष्ठानाशक्तौ प्रतिप्राजापत्यं गां दद्यात् ।

३–गवामलाभे तन्निष्क्रयीभूतमेकमेकं निष्कं दातव्यम् ।

४–तदशक्तावर्धमर्धं निष्कं दद्यात् ।

५–तत्राप्यशक्तौ निष्कपादांशो देयः ।

६–तत्राप्यशक्तिश्चेद् द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

७—तदशक्तौ चायुत (१००००) गायत्रीजपं विदध्यात्।

८—अथवा, गायत्र्या तिलाज्यसहस्रहोमं कुर्यात्।

इत्येवं विकल्पितेषु शक्त्यपेक्षयान्यतमं प्रायश्चित्तं विधाय सायंप्रातर्होमद्रव्यं प्रत्यहमाहुतिचतुष्टयपर्याप्तमतिक्रान्तदिवसान् गणयित्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।

तत्र सङ्कल्पवाक्ययोजनम्—

१—आवसथ्याधानमुख्यकालातिक्रान्तैतावद्वर्षनिरग्नित्वजनितदुरितक्षयाय एतावन्ति प्राजापत्यव्रतानि चरिष्ये।

२—तदशक्तौ प्राजापत्याम्नायत्वेन प्रतिप्राजापत्यमेकैकां गां ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे।

३—आवसथ्याधानमुख्यकालातिक्रान्तैतावद्वर्षनिरग्नित्वजनितदुरितक्षयाय प्राजापत्यप्रत्याम्नायत्वेन प्रतिप्राजापत्यमेतावतीनां गवां मूल्यमिदमेतावत्सुवर्णं ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे।

४—तद्वत्प्राजापत्याम्नायत्वेनैतावतो ब्राह्मणान् भोजयिष्यामि।

५—आवसथ्याधानमुख्यकालातिक्रान्तैतावद्वर्षनिरग्नित्वजनितदुरितक्षयाय एतावत्प्राजापत्यप्रत्याम्नायत्वेन गायत्र्या एतावन्त्ययुतानि जपिष्ये।

६–तद्वदेतावन्ति तिलाहुतिसहस्राणि होष्यामि ।

एवमेव कृतप्रायश्चित्तो होमद्रव्यं दद्यात्, तत्र सङ्कल्पः—

१–आवसथ्याधानमुख्यकालातिक्रान्तैतावद्दिनसम्बन्धि सायंप्रातर्होमद्रव्यमेतावत्परिमाणं दधितण्डुलयवानामन्यतमं ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे ।

२–तन्मूल्यमेतावत्परिमाणं वा ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे । 'हौम्यं दद्याद्यथाविधि' इति वचनादितरपक्षाद्यादिकर्मद्रव्य-दाननिवृत्तिरित्यवधेयम् ॥



पुनराधाननिमित्तानि

(१) कृतावसथ्याधानौ पत्नीयजमानौ अग्निं परित्यज्य यदि ग्रामसीमानमतीत्य (वसेताम्) वसेयातामेकां रात्रिं तत्र प्रातरागत्य अग्निं मथित्वा उक्तविधिना ब्रह्मोपवेशनादि ब्राह्मणभोजनान्तमाधानं कुर्यातास् । होमलोपे तु एकतन्त्रेण सायंप्रातर्होमः कर्तव्यः । बहुहोमलोपेऽप्येवम् ।

द्वितीयादिविवाहविषये

(२) अथ यदि सदारः कृताधानो यजमानः प्रजार्थी कामार्थी चोद्वहेत्तत्र अन्ये अरणी सम्पाद्य प्रातर्होमं विधाय दिवाविवाहं कृत्वा—

(क) आचतुर्थीकर्मणो होमं त्यक्त्वा तदन्ते अतिक्रान्त-होमद्रव्यं त्यक्त्वा पञ्चमेऽहनि पुनराधानं यथोक्तमित्येकः पक्षः ।

(ख) प्रातर्होमं कृत्वा दिवाविवाहं सम्पाद्य सद्यः

चतुर्थीकर्म च कृत्वा तद्दिन एवावसथ्याधानमिति द्वितीयः पक्षः।

(क) अत्र पक्षद्वयेऽपि पूर्वारण्योः स्फोटितयोरावसथ्ये दहनम्। अन्यारण्योराधानं पात्राणि तान्येव।

(ख) सदारस्य पुनर्दारकरणे पुनराधानाभावस्तुच्छन्दोगानामेव।

पत्नीमरणे—

(३) (क) अनेकपत्नीकस्यैकस्याः पत्न्या मरणे अरणिपात्रैः सहावसथ्येन तां दाहयित्वा आशौचान्ते पुनराधानम्।

(ख) एकपत्नीकस्य तु पत्नीमरणे कृतविवाहस्य चतुर्थीकर्मानन्तरं पुनराधानम्।

अग्निनाशे—

(४) अग्नावुपशान्ते पुनराधानम्।

प्रवासे—

(५) होमकालद्वयातिक्रमे गृहपतौ प्रोषिते प्रमादात् पत्न्या ग्रामान्तरवासे पुनराधानम्।

(६) गृहस्थिते यजमाने पत्न्याः प्रवासे प्राग्घोमकालादनागमने पुनराधानम्।

(७) केचित्तु—'ज्येष्ठायामग्निसन्निधौ तिष्ठन्त्यामन्यासां पतिसहितानां केवलानां वा कार्यवशाद् ग्रामान्तरे स्थितानाम्, पत्यौ वा अग्निसन्निधौ तिष्ठति सर्वासां पत्नीनां ग्रामान्तरगमने नाग्निनाशः ।' इत्याहुः ॥

(८) (क) पत्न्या अग्निं विना समुद्रगाया नद्या अतिक्रमे,

(ख) भर्तृरहितायाश्चाग्निना सहितायाः भयं विना सीमातिक्रमे,

(ग) कर्मार्थाहरणादन्यत्र शकटं विना शम्यापरासादूर्ध्वं त्रिरुच्छ्वसतः प्रत्यक्षाग्निहरणे,

(घ) (अग्निनाशे) मथ्यमानस्य दृष्टस्याग्नेर्मन्थनयन्त्रोत्थापनादूर्ध्वं नाशे,

(ङ) (होमाकरणे) संवत्सरमेकं यजमानस्य होमाकरणे, पुनराधानम् । तच्च प्राजापत्यब्रह्मकूर्चयोरन्यतरप्रायश्चित्ताचरणादूर्ध्वं पत्न्याश्च पादकृच्छ्राचरणात्पुनर्विवाहवदाधानमिति ज्ञेयम् ।

(९) (क) उदकेनाग्न्युपशमने,

(ख) शिक्येनाग्न्युद्वहने,

(ग) प्रत्यक्षस्य, अरणिरूढस्य वा अग्नेः एकनामधेयशतयोजनगामिनदीसन्तरणे,

(घ) योजनाधिकगामिनदीसन्तरणे,

(ङ) सर्वत्र सीमातिक्रमेण, आद्यन्तसीमातिक्रमेण वा पत्नीयजमानयोरन्वारम्भाभावे,

(च) सूकरगर्दभकाकसृगालश्वकुक्कुटमर्कटशूद्रान्त्यजमहापातकिशवसूतिकारजस्वलारेतोमूत्रपुरीषमेदोऽश्रुश्लेष्मशोणितपूयास्थिमांसमज्जासुराप्रभृतिभिरमेध्यैः प्रत्यक्षस्य अरणिसमारोपितस्य वा अग्नेः स्पर्शे ।

(छ) त्रीन्पक्षान्निरन्तरं पक्षहोमाकरणे, पुनराधानम् ।

(१०) (क) अग्नेरपहरणे ।

(ख) प्रादुष्करणादूर्ध्वं पूर्वं वा शान्तेऽग्नौ मन्थने प्रारब्धे अग्निजन्माभावे लौकिकाग्निब्राह्मणदक्षिणहस्ताजादक्षिणकर्णकुशस्तम्बजलानामन्यतमेऽग्निस्थानेऽप्रकल्पिते सूर्यास्तमये उदये वा जाते पुनराधानम् ।

(११) अग्निनाशभ्रान्त्या अग्निं मथित्वा मथितमग्निम् "अयं ते योनिः" इति मन्त्रेण अरण्योः समारोप्य पूर्वेऽग्नौ होमादिकं विदध्यात् । (नात्र पुनराधानं न वा किञ्चित्प्रायश्चित्ताचरणम्) ।

(१२) यदा तु लौकिकाग्न्याद्यन्यतमं निधाय होमं कृत्वा मन्थने प्रारब्धे द्वितीयहोमकालात्तृतीयाद्वा अग्नेर्जन्माभावस्तदा पुनराधानम् ।

(१३) आरोपिताग्न्योररण्योर्नाशे एकस्या वा पुनराधानम् ।

(१४) असमारोपितयोस्तु एकतरविनाशे द्वितीयां छित्त्वा मन्थनम् । नष्टायाः प्रतिपत्तिरावसथ्ये दाहः ।

(१५) यदा पुनर्जन्तुभक्षणेन मन्थनेन वा मन्थनायोग्ये (अरणी) भवतस्तदा अन्ये अरणी गृहीत्वा दर्शपक्षादिकर्म निर्वर्त्य जीर्णमरणिद्वयं शकलीकृत्य तस्मिन्नग्नौ प्रज्वाल्य दक्षिणहस्तेन नूतनामुत्तरामरणिं सव्यहस्तेन अधरारणिं गृहीत्वा दीप्तेऽग्नौ धारयन्–"उद्बुध्यस्वाग्ने प्रविशस्व योनिमन्यां देवयज्यां वोढवे जातवेदः । अरण्या अरणिमनुसंक्रमस्व जीर्णां तनुमजीर्णया निर्णुदस्व ।" "अयं ते योनिर्ऋत्वियो०" * इत्येतौ मन्त्रौ जपित्वा मन्थनयन्त्रं निधाय अग्निं मथित्वा भूसंस्कारपूर्वकं स्थाने निधाय पूर्णाहुतिवदाज्यं संस्कृत्यानादिष्टहोमं कुर्यात् ।



प्र०–अत्र पुनराधानस्य अरणिदोष एव निमित्तम्, अथवा अग्निनाशादीनि पूर्वोक्तानि इति निर्णयम् ।

---

* अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥

उ०—द्वितीयः पक्षो ग्राह्यः ।

प्र०—यत्र यत्र पुनराधाने ततः पूर्वं होमादिकं विहितं तत्र तत्र तद्धोमादिकं कस्मिन्नग्नौ भवेदिति निर्णयम् ।

उ०—लौकिकेऽग्नौ ।

प्र०—कुत्र कुत्र पुनराधाने प्राजापत्यादिप्रायश्चित्तम् ?

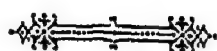
उ०—सर्वत्र ।

प्र०—इह सूत्रे प्रथमाग्न्याधाने आहरणपक्षः स्वकीयो दर्शितः अरणिप्रदानं च परेषां मतेन । तत्रैवं विचार्यं किं पारस्करानुयायिनां पुनराधानाद्यर्थमरणिसंरक्षणमवश्यं कर्तव्यमुत न ?

उ०—न ।

प्र०—अरणिसंरक्षणपक्षे च अग्निसत्त्वेऽपि अरण्योरग्निं समारोप्य संरक्षणम् ?

उ०—ग्रामादिगमने समारोपः । नान्यथा ॥



आवसथ्याधानपद्धतिः

तत्रावसथ्याधानं करिष्यन् उक्तकालातिक्रमाभावे अग्न्याधानार्थोपदिष्टमासतिथिनक्षत्रवारादिके काले प्रातः सुस्नातः सुप्रक्षालितपाणिपादः स्वाचान्तः सपत्नीको गोमयोपलिप्ते शुचौ स्वासने उपविश्य अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा आवसथ्याग्निमहमाधास्ये इति सङ्कल्पं विधाय मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं यथोक्तं कुर्यात् । छन्दऋषिसरणम् इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तम्[1] । ततः स्वशाखाध्यायिनं कर्मसु तत्त्वज्ञं ब्राह्मणं गन्धपुष्पमाल्यवस्त्रालङ्कारादिभिरभ्यर्च्य अमुकगोत्रममुकशर्माणममुकवेदममुकशाखाध्यायिनमावसथ्याधानं करिष्यन् कृताकृतावेक्षकत्वेन ब्रह्माणमेभिश्चन्दनपुष्पाक्षतवस्त्रा-

---

१. इषे त्वेत्यादिकस्य खं ब्रह्मान्तस्य माध्यन्दिनीयस्य वाजसनेयकस्य यजुर्वेदाम्नायस्य विवस्वान् ऋषिः वायुर्देवता गायत्र्यादीनि सर्वाणिच्छन्दांसि यजुरादीनि च अध्यायोपाकर्मणि विनियोगः ।



लङ्कारैस्त्वामहं वृणे । वृतोऽसीति तेन वाच्यम् । केचिद् ब्रह्माणं मधुपर्केणार्चयन्ति ऋत्विक्त्वाविशेषात् । ततः पत्न्या सहाहते वाससी परिधाय अग्न्याधानदेशे स्थण्डिलमुपलिप्य पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा तं देशमहतवाससा पिधाय ब्रह्मणा सह समृदं स्थालीमादाय ब्राह्मणैः परिवृतो वेदघोषमङ्गलगीत-वाद्यादिभिर्जनितोत्साहो वैश्यस्य तृतीयवर्णस्य बहुपशोः पशुभिः समृद्धस्य तदलाभे गोभिलादिसूत्रवचनाद् भ्राष्ट्रगृहा-दम्बरीषाद्बहुयाजिनो ब्राह्मणस्य गृहाद्बह्वन्नपाकाद् ब्राह्मण-महानसाद्वा स्थाल्यामग्निं गृहीत्वा तथैव गृहमागत्य परिसमूह-नादिपञ्चभूसंस्कारसंस्कृते स्थण्डिले प्राङ्मुख उपविश्य आत्माभिमुखमग्निं निदध्यात् ।

तत्र ब्रह्मोपवेशनादिदेवताभिधानपर्युक्षणान्तं कृत्वा स्रुव-मादाय दक्षिणजान्वाच्य ब्रह्मणान्वारब्धः (१) प्रजापतये स्वाहेति मनसा ध्यायन् प्राञ्चमूर्ध्वम् ऋजुं सन्ततमाज्येन अग्नेरु-त्तरप्रदेशे पूर्वाघारमाघारयति । इदं प्रजापतये इति त्यागं कृत्वा हुतशेषं पात्रान्तरे प्रक्षिपेत् । तथैव (२) इन्द्राय स्वाहेति, अग्नेर्दक्षिणप्रदेशे उत्तराघारमिदमिन्द्रायेति त्यागं विधाय (३) अग्नये स्वाहेति अग्नेरुत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे आग्नेयमाज्य-भागं हुत्वा इदमग्नये इति द्रव्यं त्यक्त्वा तथैव (४) सोमाय स्वाहेति दक्षिणार्द्धपूर्वार्द्धे सौम्यमाज्यभागं हुत्वा इदं सोमायेति

स्त्वं त्यजेत् । समिद्धतमे वाग्निप्रदेशे आघाराद्याः सर्वाहुतीर्जुहुयात्

अथाष्टर्चहोमः । न त्वारम्भः ।

अत्र "त्वन्नो अग्ने०" इत्यादीनामष्टानामप्यृचां मध्ये प्रत्येकमृचा घृतेन अष्टाष्टाहुतयः । एवमत्र चतुःषष्टि-र्घृताहुतयः कृता भवन्ति । तथा हि—

(१) "त्वन्नो अग्ने०" इत्यस्य वामदेवऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्नीवरुणौ देवते प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः ।

त्वन्नो अग्ने व्वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासि सीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषाᳬसि-प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । (८)

(२) "स त्वन्नो०" इति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्नीवरुणौ देवते प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः ।

स त्वन्नोऽअग्ने वमो भवोती नेदिष्ठो अस्याऽउषसो व्व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो व्वरुणᳬरराणो व्वीहि मृडीकᳬ सुहवो नऽएधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । (८)

(३) "इमम्मे०" इति मन्त्रस्य शुनःशेप ऋषिः, वरुणो देवता, गायत्री छन्दः, अभिषेके विनियोगः ।

इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय न मम । (८)

(४) "तत्त्वा यामि०" इति मन्त्रस्य शुनःशेप ऋषिः, वरुणो देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, अभिषेके विनियोगः।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो व्वरुणेह वोद्धयुरु शꣳसमानऽआयुः प्रमोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय न मम। (८)

(५) "अयाश्चाग्ने०" इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः, विराट् छन्दः, अग्निर्देवता, प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः।

अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि। अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजꣳस्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां न मम। वा इदमग्निभ्यः। (५) (८)

(६) "ये ते शतम्०" इति मन्त्रस्य शुनःशेप ऋषिः, जगती छन्दः, वरुणः, सविता, विष्णुः, विश्वेदेवा मरुतो देवताः, प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः।

ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः, न मम। केचिदिदं वरुणाय न मम। (८)

(७) "उदुत्तमम्०" इति मन्त्रस्य शुनःशेप ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, वरुणो देवता विष्णुक्रमे पाशोन्मोचने च विनियोगः।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यम ँ श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणाय न मम। (८)

(८) "भव तन्नः०" इति मन्त्रस्य गौतम ऋषिः (मधुच्छन्दा ऋषिः) आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः, निर्मथ्याहवनीयौ देवते आहवनीये मन्थनोत्थस्य प्रक्षेपे विनियोगः।

भव तन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टम्मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं निर्मथ्याहवनीयाभ्यां न मम॥ (८)

इत्येताभिरष्टभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचमेकैकामष्टाज्याहुतीर्हुत्वा यथादैवतं स्वत्वत्यागं च कृत्वा स्थालीपाकस्य जुहुयात्।

अथ स्थालीपाकेन चतस्रोऽग्न्याधेयदेवताः॥ अग्नये पवमानाय स्वाहा, इदमग्नये पवमानाय॥ अग्नये पावकाय स्वाहा, इदमग्नये पावकाय॥ अग्नये शुचये स्वाहा, इदमग्नये शुचये॥ अदित्यै स्वाहा, इदमदित्यै। इत्यग्न्याधेयदेवताभ्यः॥

ततः पूर्ववदाज्येनाष्टर्चहोमः॥ ततो ब्रह्मान्वारब्ध उत्तरार्द्धात् स्रुवेण चरुमादाय अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति अग्नेरुत्तरार्द्धे

जुहुयात् । इदमग्नये स्विष्टकृते ॥ अथानन्वारब्ध आज्येन "अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमन्देवयज्ञ१ स्वाहा व्वातेधाः स्वाहा । इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इति स्वत्वं त्यक्त्वा; ब्रह्मान्वारब्धः, ॐ भूर्भुवः स्वरिति क्रमेण प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता प्रजापतिर्ऋषिरुष्णिक्छन्दो वायुर्देवता । प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता व्याहृतिहोमे विनियोगः॥ ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये ॥ इदं भूर्वा ॥ ओं भुवः स्वाहा इदं वायवे ॥ इदं भुव इति वा ॥ ओं स्वः स्वाहा इदं सूर्याय ॥ इदं स्व इति वा ॥

ॐ त्वन्नो अग्ने ॥ स त्वन्नो अग्ने ॥ अयाश्चाग्ने ॥ ये ते शतम् ॥ उदुत्तमम् ॥ पञ्चमन्त्राः प्राजापत्यान्ता नवाहुतीर्हुत्वा बर्हिर्होमं च कृत्वा संस्रवं प्राश्याचम्य पवित्राभ्यां मुखं मार्जयित्वा पवित्रे अग्नौ प्रक्षिप्य प्रणीता अग्नेः पश्चिमतो, निनीय आसादितपूर्णपात्रवरयोरन्यतरस्य ब्रह्मणे दक्षिणात्वेन दानं कृत्वा एकब्राह्मणभोजनदानम् ॥ तथा स्मृत्यन्तरोक्तत्रयोविंशतिब्राह्मणभोजनम् ॥ अत्र मार्जनं पवित्रप्रतिपत्तिः बर्हिर्होमः प्रणीताविमोक इत्येते चत्वारः पदार्था भाष्यकारमते गृह्यकर्मसु न भवन्ति वचनाभावात् । आवसथ्याधाने बर्हिर्होमो वचनाद्भवति ॥

स्मार्ताग्नौ नित्यहोमपद्धतिः

"उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम्"

(पा० गृ० का० १ कं० ९ सू० १)

आवसथ्याधानोत्तरकालं तद्दिवस एव सायंप्रातर्होम-निमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं कृत्वा सन्ध्यावन्द-नानन्तरमग्निसमीपं गत्वा पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्य उपय-मनकुशान्, समिधस्तिस्रः, मणिकचारिदध्यादीनामन्यतमं



होमद्रव्यम्, अग्नेरुत्तरतः प्रतीचः पूर्वपूर्वदिशि क्रमेण आसाद्य, उपयमनकुशानादाय तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय, पर्युक्ष्य, द्वादशपर्वपूरकेण दधितण्डुलयवानामेकतमेन द्रव्येण हस्तेनैव स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि वह्नौ मध्यप्रदेशे देवतां ध्यायन् जुहुयात् ।

(१) अग्नये स्वाहा । इदमग्नये । (मध्ये)

तदुत्तरतः, मनसा

(२) प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये ।

इति सायम् (होमः) ।

तथैव—

(१) सूर्याय स्वाहा । इदं सूर्याय । (मध्ये)

तदुत्तरतः, मनसा

(२) प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये ।

इति प्रातर्होमः ।

(अथ–) पत्नी चेद्गर्भकामा भवति, तदा—

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ।

पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमाꣳसंवर्त्ततां मयि ॥स्वाहा॥

इदं मित्रावरुणाभ्यामश्विभ्यामिन्द्राय सूर्याय च *॥

(इति नित्यहोमात्प्राक् पत्नी जुहोति ॥)

---

* 'प्राक् पत्नी जुहोति' इति । नित्यं तावदफलम्, अकरणे प्रत्यवायजनकम् । काम्यन्तु फलवत् । तत्र फलवद् बलवद् अफलं दुर्बलं बाधते; इति न्यायात् ।

(१) नित्यहोमस्य कालः । सायंहोमो यथा छन्दोगपरिशिष्टे—

'यावत्सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः ।
न च लोहितिमापैति तावत्सायं तु हूयते ॥' इति ॥

(२) प्रातर्होमोऽनुदिते सूर्ये । स चानुदितो द्विविधः—एकः अनुदितः स्पष्टतारकोपलक्षितः कालः । अपरः समयाध्युषितः—ततः परमुदयात्प्राक्कालः ।

(३) होमद्रव्यम्—दधि गव्यम् । तण्डुला व्रीहिमयाः । अक्षताः सत्वक्का यवाः । तत्र येन द्रव्येण सायंहोमस्तेनैव प्रातर्होमः कर्तव्यः । 'सायमादि प्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते' इति वचनात् । तथा सायंप्रातर्होमावपि एकेनैव होत्रा कर्तव्यौ; येनारम्भस्तेनैव समाप्तिरिति न्यायात् ।

(४) मन्त्रोच्चारणे विशेषः; सर्वत्र प्रजापतियाग उपांशु । स्वाहाकारः श्राव्यस्त्यागश्च । आघारे तु स्वाहान्तोऽपि मानसः ।

(५) त्यागवाक्यं यजमानेन कार्यम् । ततश्च प्रवसता यजमानेन यथाकालं यथादैवतं शुचिना आचान्तेन प्राङ्मुखोपविष्टेन सर्वकर्मसु कर्तव्यम् ।

होमद्रव्येषु—दधितण्डुलयवानामलाभे श्यामाकनीवारवेणुयवकन्दमूलफलजलेतिसप्तानां पूर्वपूर्वालाभे परं परं नित्यहोमाय ग्राह्यम् । कन्दं सूरणादि । फलमाम्रादि ॥

पञ्च महायज्ञाः

(पा० गृ० कां० २ कं० ९ सू० १)

अत्र हरिहरभाष्यम् । अथ समावर्तनानन्तरं कृतविवाहस्य पञ्चमहायज्ञेष्वधिकारः । अतो हेतोः पञ्चसंख्याका महायज्ञाः महायज्ञशब्दवाच्याः कर्मविशेषाः पञ्च महायज्ञा व्याख्यास्यन्त इति ।

अथ पद्धतिः

ततः पञ्चमहायज्ञनिमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं कृत्वा वैश्वदेवार्थं पाकं विधाय समुद्धृत्याभिघार्य पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्य, दक्षिणं जान्वाच्य मणिकोदकेनाग्निं पर्युक्ष्य हस्तेन द्वादशपर्वपूरकमोदनमादाय—

(१) ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे ।

(२) प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये ।

(३) गृह्याभ्यः स्वाहा, इदं गृह्याभ्यः ।

(४) कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय ।

(५) अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये । इति देवयज्ञः ।१।

इति पञ्चाहुतीर्हुत्वा मणिकसमीपे प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा हुतशेषेणान्नेन बलित्रयं दद्यात् । तद्यथा—

(१) पर्जन्याय नमः, इदं पर्जन्याय ।

(२) अद्भ्यो नमः, इदमद्भ्यः ।

(३) पृथिव्यै नमः, इदं पृथिव्यै । इति दद्यात् । ततो द्वारशाखयोर्दक्षिणोत्तरयोर्यथाक्रमम्—

(१) धात्रे नमः, इदं धात्रे ।

(२) विधात्रे नमः, इदं विधात्रे । इति द्वौ बली दत्त्वा, प्रतिदिशम्—

(१) वायवे नमः, इदं वायवे ।

(२) वायवे नमः, इदं वायवे ।

(३) वायवे नमः, इदं वायवे ।

(४) वायवे नमः, इदं वायवे । इत्येवं चतसृषु दिक्षु चतुरो बलीन्दद्यात् । इदं वायवे, न मम । इति त्यागः ॥ ४ ॥

ततो दिग्भ्यो बलीन्दद्यात्—

(१) प्राच्यै दिशे नमः, इदं प्राच्यै दिशे, न मम ।

(२) दक्षिणायै दिशे नमः, इदं दक्षिणायै दिशे, न मम ।

(३) प्रतीच्यै दिशे नमः, इदं प्रतीच्यै दिशे, न मम ।

(४) उदीच्यै दिशे नमः, इदमुदीच्यै दिशे, न मम ।

अथ दत्तानां बलीनामन्तराले—

(१) ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे, न मम ।

(२) अन्तरिक्षाय नमः, इदमन्तरिक्षाय, न मम ।

(३) सूर्याय नमः, इदं सूर्याय, न मम । इति प्राक्संस्थं बलित्रयं दद्यात् । ततो ब्रह्मादीनां बलित्रयस्योत्तरप्रदेशे—

(१) विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।

(२) विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः । इति द्वौ बली दद्यात् । तयोरुत्तरतः—

(१) उषसे नमः, इदमुषसे ।

(२) भूतानां च पतये नमः, इदं भूतानां च पतये । इति द्वौ बली दद्यात् । इति भूतयज्ञः ॥ २ ॥

अथ पितृयज्ञः

ततो ब्रह्मादीनां बलीनां दक्षिणप्रदेशे प्राचीनावीती दक्षिणामुखः ।

(१) पितृभ्यः स्वधा नमः, इदं पितृभ्यो न मम । इति मन्त्रेणैकं बलिं पात्रेऽवशिष्टान्नेन दद्यात् । इति पितृयज्ञः ॥३॥

तत्पात्रं प्रक्षाल्य निर्णेजनजलं ब्रह्मादिबलीनां वायव्ये निनयेत् ।

(१) 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्' इत्यनेन मन्त्रेण, इदं यक्ष्मणे । ततो गोकाकादिभ्यो बलीन्बहिर्दद्यात् । तद्यथा—

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥ १ ॥

—इदं गोभ्यो न मम । इति गोभ्यो बलिः ।

ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम् ॥ २ ॥

—इदं वायसेभ्यः ।

द्वौ श्वानौ श्याव (म) शबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।
ताभ्यां पिण्डं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥ ३ ॥

—इदं श्वभ्याम् ।

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसंघाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥ ४ ॥

—इदं देवादिभ्यः ।

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्याः
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया प्रदत्तं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥ ५ ॥

—इदं पिपीलिकादिभ्यः ।

ततः पादौ प्रक्षाल्य आचम्य, अतिथिप्राप्तौ पादप्रक्षालनपूर्वकं गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्य अन्नं परिवेष्य 'हन्त तेऽन्नमिदं मनुष्याय' इति सङ्कल्प्य तमाशयेत् । तदभावे षोडशग्रासपरिमितं चतुर्ग्रासपरिमितं वा अन्नं पात्रे कृत्वा निवीती भूत्वा उदङ्मुख उपविष्टः 'हन्त तेऽन्नमिदं मनुष्याय' इति सङ्कल्प्य कस्मैचिद्ब्राह्मणाय दद्यात्, मनुष्ययज्ञसिद्धये ।

ततो नित्यश्राद्धं कुर्यात् । तद्यथा—

स्वागतवचनेन षड् ब्राह्मणान्, द्वौ वा एकं वाभ्यर्च्य पादौ प्रक्षाल्य आचम्य गृहं प्रवेश्य कुशान्तर्हितेष्वासनेषूदङ्मुखानुपवेशयेत् ।

ततः स्वयमाचम्य प्राङ्मुख उपविश्य पुण्डरीकाक्षं श्री-वासुदेवं च संस्मृत्य सावित्रीं पठित्वा, अद्येत्यादि देशकालौ स्मृत्वा प्राचीनावीती दक्षिणामुखः सव्यं जान्वाच्य अमुक-गोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणां तथा अमुकगोत्राणामस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममु-कामुकशर्मणां नित्यश्राद्धमहं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय नित्य-श्राद्धं कुर्यात् ।

ततो यथार्हं भिक्षुकादिभ्योऽन्नं संविभज्य बालज्येष्ठाश्च गृह्या यथायोग्यमश्नीयुः । ततो जायापती अश्नीतः । प्राग् वा गृहपतिः ततः पत्नी । ततो वातिथ्यादीनाशयित्वा यजमानः स्वयमश्नीयात्तदनु पत्नीति ॥

॥ इति पञ्च महायज्ञाः ॥



आवश्यके कर्मणां गौणकालाः

(१) मुख्यकाले यदावश्यं कर्म कर्त्तुं न शक्यते ।
गौणकालेऽपि कर्तव्यं गौणोऽप्यत्रेदृशो भवेत् ॥ १ ॥
आसायमाहुतेः कालात्कालोऽस्ति प्रातराहुतेः ।
प्रातराहुतिकालात्प्राक् कालः स्यात्सायमाहुतेः ॥ २ ॥
पौर्णमासस्य कालोऽस्ति पुरा दर्शस्य कालतः ।
पौर्णमासस्य कालात्प्राग् दर्शकालोऽपि विद्यते ॥ ३ ॥
वैश्वदेवस्य कालोऽस्ति प्राक्प्रघासविधानतः ।
प्रघासानाञ्च कालः स्यात् शाकमेधीयकालतः ॥ ४ ॥
स्यात्शाकमेधकालोऽप्याशुनासीरीयकालतः ।
शुनासीरीयकालोऽस्ति आवैश्वदेवकालतः ॥ ५ ॥
श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैरन्योन्यकालतः ।
प्राग्यष्टुं युज्यतेऽवश्यं न त्वत्राग्रायणात्परः ॥ ६ ॥

दक्षिणायनकाले वा पश्चिज्या वोत्तरायणे।
अन्योन्यकालतः पूर्वं यष्टुं युक्ते उभे अपि॥ ७॥
एवमागामियागीयमुख्यकालादधस्तनः।
स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः॥ ८॥
यद्वागामिक्रियामुख्यकालस्याप्यन्तरात्मवत्।
गौणकालत्वमिच्छन्ति केचित्प्राक्तनकर्मणि॥ ९॥
गौणेष्वेतेषु कालेषु कर्म चोदितमाचरेत्।
प्रायश्चित्तप्रकरणे प्रोक्तां निष्कृतिमाचरेत्॥१०॥
प्रायश्चित्तमकृत्वा वा गौणकाले समाचरेत्।
नित्येष्टिमग्निहोत्रं च भारद्वाजीयभाष्यतः॥११॥
मुख्यकाले हि मुख्यं चेत्साधनं नैव लभ्यते।
तत्कालद्वययोगस्य मुख्यत्वं गौणतापि वा॥१२॥
मुख्यकालमुपाश्रित्य गौणकालप्रतीक्षणम्।
एकपक्षगतो यावान् होमसाध्यो विपद्यते॥१३॥
पक्षहोमविधानान्तं हुत्वा तन्तुमयीं यजेत्।

प्रतिदिनं वैश्वदेवपाकानन्तरं पञ्चमहायज्ञानुष्ठानं प्रतिपत्सु तु दर्शपौर्णमासयागानुष्ठानानन्तरं पक्षादिषु स्थालीपाकं श्रपयित्वा दर्शपौर्णमासदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति 'ब्रह्मणे' 'प्रजापतये' इत्यादिसूत्रात्।



पक्षादिकर्मविधिः

(१) तत्र प्रथमप्रयोगे मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकश्राद्धं कुर्यात् ।

(२) अमाषममांसमक्षारालवणं हविष्यं व्रताशनं विधाय रात्रावग्निसमीपे भूमौ दम्पती पृथक् शयीयाताम् ।

(३) प्रातः स्नात्वा सन्ध्यावन्दनानन्तरं प्रातर्होमं च निर्वर्त्य उदिते सूर्ये पौर्णमासं स्थालीपाकमारभेत ।

(४) तत्र (यज्ञशालायाम्) आत्मनो ब्रह्मणः प्रणीतानां चासनचतुष्टयं कुशैर्दद्यात् ।

(५) तदनु 'पक्षादिकर्मणाहं यक्ष्ये' अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव इति वाक्येन यजमानो ब्रह्माणं वृणुयात् ।

स च 'ब्रह्मा भवामि' इति प्रतिवचनं दद्यात् । ततश्च नियतासने ब्रह्माणमुपवेशयेत् ।

(६) अत्रासादने वैश्वदेवान्नासादनं तत्प्रोक्षणं च विशेषः। तद्यथा—

ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्।

ततः परिस्तरणम्—बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्यादिवायव्यान्तम्, अग्नितः प्रणीतापात्रपर्यन्तम्।

ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्। पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयम्। प्रोक्षणीपात्रम्। आज्यस्थाली, सम्मार्जनार्थं कुशत्रयम्। उपयमनार्थं वेणीरूपं कुशत्रयम्, समिधस्तिस्रः, स्रुवः, आज्यम्। स्थालीपाकार्थं तण्डुलमुष्टिद्वयम्। वैश्वदेवान्नम्। षट्पञ्चाशदुत्तरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नतण्डुलपूर्णं पात्रम्। पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेण आसादनीयम्।

ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा ततः सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनम्। ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम्। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुद्दिङ्गनम्। प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणम्। प्रोक्षणीजलेन

यथासादितवस्तुसेचनम्। ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानम्।

तत आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः। ततोऽधिश्रयणम्। (आज्यस्य स्थालीपाकार्थं सजलतण्डुलस्थाल्याश्चाधिश्रयणम्।) ततो ज्वलत्तृणादिना आज्यं स्थालीपाकं च वेष्टयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः। पर्यग्निकरणम्।

ततः स्रुवप्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं सम्मृज्य प्रणीतोदकेन अभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात्।

तत आज्यस्य स्थालीपाकस्य च अग्नेरवतारणम्। तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनम्। पुनः प्रोक्षण्युत्पवनं च कृत्वा तत उपयमनकुशानादाय उत्तिष्ठन् प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्तास्तिस्रः समिधः क्षिपेत्।

तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेण अग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेण आज्याहुतीर्जुहोति।

तत्र आघाराज्यभागयोश्चतसृष्वाहुतिषु स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः। प्रजापतये स्वाहा। इदं

प्रजापतये न मम इति मनसा । इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम । इत्याघारौ । अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम । सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम । इत्याज्यभागौ ।

(७) घृतेन स्थालीपाकमभिघार्य स्रुवेण चरुमादाय हवनं कुर्यात् ।

तद्यथा—

(१) 'अग्नये स्वाहा' इदमग्नये ।

(२) 'अग्नीषोमाभ्याᳪस्वाहा' इदमग्नीषोमाभ्याम् ।

(३) उपांशु पुनः 'अग्नीषोमाभ्याᳪस्वाहा' इदमग्नीषोमाभ्याम् ।

(४) उच्चैः स्वरेण 'ब्रह्मणे स्वाहा' इदं ब्रह्मणे ।

(५) 'प्रजापतये स्वाहा' इदं प्रजापतये ।

(६) 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।

(७) 'द्यावापृथिवीभ्याᳪस्वाहा' इदं द्यावापृथिवीभ्याम् ।

हुतशेषं स्रुवेण अग्नेरुत्तरतः प्राक्संस्थम् ।

(१) 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।

(२) 'भूतगृह्येभ्यो नमः' इदं भूतगृह्येभ्यः ।

(३) 'आकाशाय नमः' इदमाकाशाय ।

—एभिर्मन्त्रैः स्रुवेण बलित्रयं दद्यात् । ततोऽभिघारितवैश्वदेवान्नात्स्रुवेणादाय 'अग्नये स्वाहा' इदमग्नये । 'प्रजा-

पतये स्वाहा' इदं प्रजापतये । 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः । इत्याहुतित्रयमग्नौ हुत्वा स्थालीपाकोत्तरार्द्धाद्वैश्वदेवोत्तरार्द्धाच्च 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इदमग्नये स्विष्टकृते इति हुत्वा 'भूः' इत्यादि प्राजापत्यान्ता नवाहुतीर्जुहुयात् । तद्यथा—

(१) भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम ।

(२) भुवः स्वाहा । इदं वायवे० ।

(३) स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय० । एता महाव्याहृतयः ।

(४) त्वन्नो अग्ने इति वामदेव ऋषिरग्नीवरुणौ देवते त्रिष्टुप्छन्दो होमे विनियोगः । त्वन्नो ऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठ्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वाद्वेषा॑ᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां०

(५) सत्वन्नो ऽअग्ने वमो भवोती नेदिष्ठ्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ अवयक्ष्व नो व्वरुणᳬरराणो व्वीहि मृडीकᳬसुहवो न ऽएधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां०

(६) अयाश्चाग्ने इति वामदेव ऋषिरग्निर्देवता त्रिष्टुप् छन्दः सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः ॥

अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्त्वमित्वमया असि अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजᳬ स्वाहा । इदमग्नये०

(७) ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च० ॥

(८) उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्मदवाधमं व्विमध्यमꣳ श्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणाय० एताः प्रायश्चित्तसंज्ञकाः ।

(९) प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ।

संस्रवप्राशनं मार्जनं पवित्रप्रतिपत्तिः, न प्रणीताविमोकः। ब्रह्मणे दक्षिणादानान्तं कृत्वा चरुशेषमादाय शालाया बहिरुपलिप्तायां भूमौ प्राङ्मुख उपविश्य स्रुवेण स्त्र्यादिभ्यो बलिं दद्यात् ।

(१) 'नमः स्त्रियै' इदं स्त्रियै० ।

(२) 'नमः पुꣳ से वयसे नमः' इदं पुꣳ से वयसे० ।

(३) 'नमः शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापिनां पतये नमो ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वारण्ये तेभ्यः ।' इदं ये मे इत्यादि० ।

(४) नमोऽस्तु ब्रलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजां मे ददतु। इदं स्त्रियै पुंस्से वयसे शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापिनां पतये ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वारण्ये तेभ्यः। इदमेभ्यः० इति वा त्यागः। शेषं प्रणीताद्भिः प्रप्लाव्य, आचम्य, अग्निसमीपमागत्य प्रणीताविमोकं कृत्वा, 'एकस्मै ब्राह्मणाय भोजनं ददामि' इति सङ्कल्पयेत्।

इति पक्षादिकर्मविधिः।

अथ दर्शयागः

दर्शे पुनरियान् विशेषः स्थालीपाकेनाग्नये विष्णवे इन्द्राग्निभ्यामिति दर्शदेवताभ्यो होमः, अनुदिते चारम्भः, शेषं समानम्।

अथैककर्मत्वम्

सायमादिप्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते।
पौर्णमासादिदर्शान्तमेकमेव विदुर्बुधाः॥

इति वचनात्।

कृष्णपक्षे यद्याधानं तदा दर्शमनिष्ट्वैव पौर्णमास्यां पक्षादिकर्मारम्भः। यत्तु छन्दोगपरिशिष्टवचनम्—

'ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि चाग्रिमः ।
य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतेः ॥'
तत्पुनराधानविषयं तच्छाखिविषयं वा ॥

पक्षादिशब्दव्याख्या (यागकालः)

पक्षाणामादयः पक्षादयः तासु पक्षादिषु प्रतिपत्सु । अत्र यद्यपि पक्षादिष्वित्युक्तं तथापि सन्धिमभितो यजेतेति वचनात् ।

'पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ।
यागकालः स विज्ञेयः प्रातर्युक्तो मनीषिभिः ॥'
इति पर्वचतुर्थांशोऽपि यागकालत्वेनाभिमतः ॥

आमध्याह्नं यागकालः

पूर्वाह्णे वाथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते ।
तदैव यागकालः स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥

तत्रापि—

सन्धिर्यदा पराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेऽहनि ।
कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति ॥

॥ इति यागकालनिर्णयः ॥



पक्षहोमविधिः

(समासहोमविधिः)

तत्र यजमानस्य आमयादिनिमित्ते रोगार्त्तविघ्नगमने राष्ट्रभ्रंशे धनाभावे गुरुगृहवासे अन्यास्वपि भयाद्यापत्सु होमानां समासो भवति। तद्यथा—

प्रतिपदि सायंकाल आहुतिपरिमाणं होमद्रव्यं चतुर्दशकृत्व एकस्मिन् पात्रे कृत्वा अग्नये स्वाहेति हुत्वा पुनस्तथैव चतुर्दशकृत्वो होमद्रव्यं गृहीत्वा प्रजापतये स्वाहेति जुहुयात्। एवमेव होमद्रव्यं चतुर्दशकृत्व एकस्मिन् पात्रे कृत्वा सूर्याय

स्वाहेति प्रातर्हुत्वा पुनस्तथैव चतुर्दशकृत्वो होमद्रव्यं गृहीत्वा प्रजापतये स्वाहेति जुहुयात् ।

ततो दक्षिणेन पाणिना प्रागग्रामुत्तरारणिं गृहीत्वा सव्येनाधरारणिमग्नेरुपरि धारयन् 'अयं ते योनिः' इति मन्त्रेणाग्निं समारोप्यारणी धारयेत् ।

अथ पौर्णमास्याममावास्यायां वा प्राप्तायां प्रातररण्यो-रग्निं निर्मथ्य कुण्डे निधायावसरप्राप्तं वैश्वदेवादिकं कर्म विधाय सायंकाले सायंहोमं प्रातःकाले प्रातर्होमं हुत्वा पक्षादिहोमं कुर्यात् । एतावतापि कालेन यद्यापन्न निवर्त्तते तदा उक्तविधिना पुनः पक्षहोमान् कुर्यात् ।

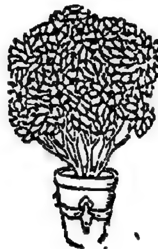
तृतीये पक्षे तु आपदनुवृत्तावपि न पक्षहोमविधिः किं तु कृच्छ्रेणापि पृथगेव सायंप्रातर्होमान् विदध्यात् । ततोऽप्यापद-नुवृत्तौ पुनरुक्तविधिना पक्षे पक्षे होमसमासं कुर्यात् । न तु तृतीये पक्षे । एवं यदैवापन्निमित्तं तदाद्यौपवसथ्याहप्रात-र्होमपर्यन्तानां होमानां समासं कुर्यात् । न पक्षान्तरगतानाम् ।

कठश्रुतिपक्षे तु न पक्षद्वयमेव पक्षहोमनियमः; अपि तु आपदनुवृत्तौ यावदापन्निवृत्तिस्तावत्प्रतिपक्षमुक्तप्रकारेण निरन्तरं पक्षहोमान् समस्येदित्येकः प्रकारः । प्रकारान्तरं तु सायंकाले समिदाधानपर्युक्षणानन्तरम् आहुतिपरिमाणं होम-

द्रव्यमग्नये स्वाहेति हुत्वा पुनस्तथैव सूर्याय स्वाहेति हुत्वा आहुतिद्वयपर्याप्तं होमद्रव्यमादाय प्रजापतये स्वाहेति सकृज्जुहुयात् ।

इति सायंप्रातस्तनयोः समासं यावदापदमाचरेत् । यदा त्वापदो गुरुत्वं भवति तदा सायंहोमैरेव अनेन विधिना प्रातर्होमानां समासं कुर्यात् । एवं पक्षहोमसमासे कृते यद्यन्तराले आपन्निवृत्तिस्तदा प्रत्यहं सायंप्रातर्होमान् हुतानपि जुहुयात् न वेति कठा आमनन्ति ।

एते च होमसमासाः सायमुपक्रमाः प्रातरपवर्गा इत्युत्सर्गः। आपद्विशेषे तु प्रातरुपक्रमाः सायमपवर्गाः पूर्वाह्णापराह्णादि-कालानपेक्षा अपि बोद्धव्याः; यतस्तत्रापत्कालपुरस्कारेणैव होमसमासोत्क्रमो युज्यते ॥



मणिकावधानपद्धतिः

ततो मणिकावधाननिमित्तमातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं कृत्वा अग्नेरीशानप्रदेशे—'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे नार्यसि' इति मन्त्रेणाभ्रिमादाय—'इदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि' इत्यवटं भाण्डानुमानं परिलिख्य उदकस्पर्शं कृत्वा खात्वा प्रत्यञ्चः (प्रतीचः) पांसूनपास्य कुशानास्तीर्य अक्षतान् अरिष्टकान् ऋद्धिवृद्धिहरिद्रादूर्वादिमङ्गलद्रव्यं निक्षिप्य तदुपरि—'समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भुः' इत्येतावता मन्त्रेण मणिकमवटे अवधाय—'आपो रेवतीः क्षयथाहिवस्वः

क्रतुं च भद्रं विभृथामृतं च। रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयोधात्' इत्यन्तेन मन्त्रेण 'आपो हि ष्ठा मयोभुवः' इत्याद्यृचेन च मणिके अप आसिञ्चति ब्राह्मणमेकं च भोजयेदिति मणिकावधानम्।

मणिकावधानसूत्राणि पा० ३। ५

अथातो मणिकावधानम् ॥ १ ॥ उत्तरपूर्वस्यां दिशि यूपवद्वटं खात्वा कुशानास्तीर्याक्षतानरिष्टका ँ श्चान्यानि चाभिमङ्गलानि च तस्मिन् मिनोति मणिक ँ समुद्रोऽसीति॥२॥ अप आसिञ्चति आपो रेवतीः क्षयथाहिवस्वः क्रतुं च भद्रं विभृथामृतं च रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नी सरस्वती तद्गृणते वयोधादिति ॥३॥ आपो हि ष्ठेति च तिसृभिः ॥४॥ ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥५॥



श्रवणाकर्मप्रयोगः

तत्र श्रावण्यां पूर्णिमायां श्रवणाकर्म भवति। तस्य प्रथमप्रयोगे मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं विधाय, आवसथ्याग्नौ कर्म कुर्यात्। यथा—ब्रह्मोपवेशनादिप्राशनान्तेऽयं विशेषः—चरुस्थाल्यनन्तरं भर्जनकर्परम्, तत एकं कपालं तथा तण्डुलानन्तरं यवान्, ततस्तण्डुलपिष्टानि आसादयेत्। प्रोक्षणकाले यथासादितं प्रोक्षेत्।

उपकल्पयति च—दृषदुपले, शूर्पं, उदपात्रदर्व्यौ, कङ्कतत्रयम्, अञ्जनम्, अनुलेपनम्, स्रजश्चेति।

ततः पवित्रकरणादिप्रोक्षणीनिधानान्ते चरुदेशस्योत्तरतो भर्जनमधिश्रित्य तदुत्तरतः कपालमुपधाय, आज्यं

निरूप्य चरुपात्रे प्रणीतोदकासेचनपूर्वकं तण्डुलप्रक्षेपं कृत्वा, ब्रह्मद्वारा आज्यमधिश्रित्य, स्वयं चरुम्, अन्येन भर्जने यवान्, अपरेण एककपाले पुरोडाशमधिश्रित्य पुरोडाशं प्रथयित्वा, यावत्कपालं सर्वेषां पर्यग्निकरणं कुर्यात् ।

ततः स्रुवं संस्कृत्य, आज्यमुद्वास्य, चरुं चोद्वास्य, आज्यस्य उत्तरतः स्थापयित्वा, धाना उद्वास्य, चरोरुत्तरतो निधाय पुरोडाशमुद्वास्य धानानामुत्तरतः स्थापयेत् ।

तत आज्योत्पवनावेक्षणप्रोक्षण्युत्पवनानि कृत्वा, धानानां भूयसीर्धाना दृषदुपलाभ्यां पिष्ट्वा, अल्पाः पृथक् स्थापयित्वा, घृतेन सक्तूनकृत्वा, उपयमनकुशादानाद्याज्यभागान्तं कर्म कुर्यात् । तत आज्येन—'अपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा ॥' इति 'इदं श्वेतपदे' इति त्यागं विधाय,

'न वै श्वेतस्याध्याचारे हि ददर्श कश्चन श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहा ॥' इति मन्त्रेण द्वितीयामाहुतिं हुत्वा, इदं श्वेताय वैदर्व्याय इत्युक्त्वा, स्थालीपाकेन चतस्र आहुतीर्जुहोति । तद्यथा—

(१) विष्णवे स्वाहा । इदं विष्णवे । (२) श्रवणाय स्वाहा । इदं श्रवणाय । (३) श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा ।

इदं श्रावण्यै पौर्णमास्यै । (४) वर्षाभ्यः स्वाहा । इदं वर्षाभ्यः । अथ धानावन्तं करम्भिणमित्यृचा धानानामेकाहुतिं हुत्वा इदमिन्द्रायेति त्यक्त्वा,

सक्तूनामाहुतित्रयं जुहुयात् । यथा—

(१) 'आग्नेयपाण्डुपार्थिवाना ँ सर्पाणामधिपतये स्वाहा ।' इदंशब्दयुक्तः स्वाहाकाररहितोऽयं मन्त्र एव त्यागस्त्रिषु ।

(२) 'श्वेतवाग्रवान्तरिक्षाणा ँ सर्पाणामधिपतये स्वाहा' ।

(३) 'अभिभूः सौर्यदिव्याना ँ सर्पाणामधिपतये स्वाहा' ॥ ततः—

'ध्रुवाय भौमाय स्वाहा'

इति सर्वं पुरोडाशं स्रुवे कृत्वा जुहुयात् । इदं ध्रुवाय भौमाय इति त्यक्त्वा, चरुधानासक्तुभ्य उत्तरतः किञ्चित्किञ्चिदादाय स्विष्टकृतं विधाय,

महाव्याहृतिहोमं संस्रवप्राशनं ब्रह्मणे दक्षिणादानान्तं कुर्यात् ।

अथ बलिकर्म

अथ हुतशेषसक्तूनामेकदेशं शूर्पे प्रक्षिप्य, आदाय, उदपात्रम्, दर्वीम्, कङ्कतत्रयाञ्जनानुलेपनस्रजश्च शालाया

वहिर्निष्क्रम्य ब्रह्मणा उल्काधारेण सह स्वाङ्गणे हस्तमात्रं स्थण्डिलं स्वयमुपलिप्य, लौकिकाग्न्युल्कायां ध्रियमाणायां 'मान्तरामभत' इति प्रैषमुच्चार्य वाग्यतः स्थण्डिले उदपात्रमादाय,

(१) 'आग्नेयपाण्डुपार्थिवाना ँ सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व ।' इत्येकत्रावनेजनार्थं जलं दत्त्वा,

(२)'श्वेतवायवान्तरिक्षाणा ँ सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व ।' इति द्वितीयम् ।

(३) 'अभिभूः सौर्यदिव्याना ँ सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व ।' इति तृतीयं सर्पानवनेजयति ।

ततोऽवनेजनस्थानेषु अवनेजनक्रमेण एतैरेव मन्त्रैः 'एष ते वलिः' इत्यन्तैस्त्रिभिः प्रतिमन्त्रं वलिं हरति ।

ततः पूर्ववदवनेज्य कङ्कतत्रयेण 'प्रलिखस्व' इत्यन्तैरेतैरेव मन्त्रैः प्रतिवलिं प्रतिमन्त्रं प्रलिखति ।

ततः 'अङ्क्ष्व' इत्यन्तैरुक्तमन्त्रैः प्रतिवलिं प्रतिमन्त्रमञ्जनं ददाति ।

तथैव 'अनुलिम्पस्व' इत्यन्तैरनुलेपनम् ।

एवमेव 'स्रजो नह्यस्व' इति पुष्पमालां दत्त्वा, स्थण्डिले सक्तुशेषं क्षिप्त्वा, उदपात्रजलेन प्रसम्प्लाव्य,

(१) नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु येऽन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६॥ (य० सं० १३ । ६)

(२) याऽइषवो यातुधानानां या वा वनस्पतिरनु ॥ ये वा वटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥७॥ (य० सं० १३ । ७)

(३) ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ॥ येषामप्सु सदस्कृतन्तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥८॥ (य० सं० १३।८)

इति तिसृभिर्ऋग्भिः सर्पांस्तिष्ठन्नुपतिष्ठते ।

ततः स गृहपतिः एतावन्तं देशं सर्पा न प्रविशेयुरिति यावत्कामयेत तावन्तं देशं सन्ततोदकधारया त्रिःपरिषिञ्चयन् गृहं परीयात् 'अपश्वेतपदा जहि' इति पूर्वोक्तमन्त्राभ्यां सकृद् द्विस्तूष्णीम् ।

ततो दर्वीं शूर्पं च प्रक्षाल्य उल्कायां सकृत् प्रतप्य उल्काधारायां प्रयच्छति ।

अथ शालाद्वारि आपो हि ष्ठा इति तृचेन* ब्रह्मयजमानो-ल्काधारा मार्जयन्ते जलेनात्मानम् । ततो धानाः प्राश्नन्ति ब्रह्मयजमानोल्काधारा अनवखण्डयन्तः ततो ब्राह्मणभोजनम् एतावच्छ्रवणाकर्म ॥

---

* ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि ॥ ऋच्शब्दे परे त्रेः सम्प्रसारणमुत्तरपदादेर्लोपश्चेति वक्तव्यम् । तृचं सूक्तम् । (सिद्धान्तकौमुदी वैदिकप्रकरण अ० ६)

अथ प्रत्यहं बलिहरणप्रयोगः

सक्तुशेषं सुगुप्ते भाण्डे स्थापयित्वा ततः अस्तमिते सूर्ये सक्तुदर्वीकङ्कतत्रयं निधायोदपात्रं गृहीत्वा सोल्काधारः शालाया वहिरुपलेपनादि परिलेखनान्तं बलिहरणमनुदिनं पूर्ववत्कुर्यात् आग्रहायणीं यावत् । मान्तरागमतेति प्रैषाभावेऽपि कश्चिद् अन्तरा न गच्छेद् दर्वीमुखमेव प्रक्षालयेदिति अहरहर्बलिदानविधिः ।

श्रवणाकर्मसूत्राणि पा० गृ० २, १४

अथातः श्रवणाकर्म ॥१॥ श्रावण्यां पौर्णमास्याम् ॥२॥ स्थालीपाकꣳश्रपयित्वाक्षतधानाश्चैककपालं पुरोडाशम् ॥३॥ धानानां भूयसीः पिष्ट्वाज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति अपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च प्रजा राजबान्धवैः स्वाहा ॥४॥ न वै श्वेतस्याभ्याचारे हि ददर्श कञ्चन श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहेति ॥५॥ स्थालीपाकस्य जुहोति विष्णवे श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्चेति ॥६॥ धानावन्तमिति धानानाम् ॥७॥ घृताक्तान् सक्तून्सर्पेभ्यो जुहोति ॥८॥

आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा अभिभूः सौर्य-

दिव्यानाᳪं सर्पाणामधिपतये स्वाहेति ॥९॥ सर्वहुतमेककपालं ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति ॥१०॥ प्राशनान्ते सक्तूनामेकदेशᳪं शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रम्य बहिःशालायाः स्थण्डिलमुपलिप्योल्कायां ध्रियमाणायां मान्तरागमतेत्युक्त्वा वाग्यतः सर्पानवनेजयति ॥ ११ ॥ आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाᳪं सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणाᳪं सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व अभिभूः सौर्यदिव्यानाᳪं सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वेति ॥ १२ ॥

यथावनिक्तं दर्व्योपघातᳪं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिᳪं हरति ॥ १३ ॥ आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाᳪं सर्पाणामधिपत एष ते बलिः, श्वेतवायवान्तरिक्षाणाᳪं सर्पाणामधिपत एष ते बलिः, अभिभूः सौर्यदिव्यानाᳪं सर्पाणामधिपत एष ते बलिरिति ॥१४॥ अवनेज्य पूर्ववत्कङ्कतैः प्रलिखति ॥१५॥

आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाᳪं सर्पाणामधिपते प्रलिखस्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणाᳪं सर्पाणामधिपते प्रलिखस्व अभिभूः सौर्यदिव्यानाᳪं सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वेति ॥ १६ ॥ अञ्जनानुलेपनᳪं स्रजश्चाञ्जस्वानुलिम्पस्व स्रजोऽपिनह्यस्वेति ॥ १७ ॥ सक्तुशेषᳪं स्थण्डिले न्युप्योदपात्रेणोपनिनीयोपतिष्ठते नमोऽस्तु सर्पेभ्यः इति तिसृभिः ॥ १८ ॥

स यावत्कामयेत न सर्पा अभ्युपेयुरिति तावत्सन्ततयोदधारया निवेशनं त्रिः परिषिञ्चन् परीयादपश्वेतपदा जहीति द्वाभ्याम् ॥ १९ ॥ दर्वीं शूर्पं च प्रक्षाल्य प्रतप्य प्रयच्छति ॥ २० ॥ द्वारदेशे मार्जयन्त आपो हि ष्ठेति तिसृभिः ॥२१॥ अनुगुप्तमेतꣳसक्तुशेषं निधाय ततोऽस्तमितेऽग्निं परिचर्य दर्व्योपघातꣳ हरेदाग्रहायण्याः ॥ २२ ॥ तꣳ हरन्तं नान्तरेण गच्छेयुः ॥२३॥ दर्व्याचमनं प्रक्षाल्य निदधाति ॥२४॥ धानाः प्राश्नन्त्यसꣳस्यूताः ॥२५॥ ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥२६॥



अष्टकाकर्म

(१) आग्रहायण्याः पूर्णिमाया ऊर्ध्वं याश्चतस्रः कृष्णपक्षीया अष्टम्यो भवन्ति तासु क्रमशश्चत्वार्यष्टकाकर्माणि भवन्ति । तत्र पौषकृष्णाष्टम्यामैन्द्री (इन्द्रदेवताका) प्रथमाष्टका भवतिः तत्सम्बन्धादेव च परेद्युर्नवम्यामन्वष्टकापि भवति । एवमेव माघकृष्णाष्टम्यां वैश्वदेवी (विश्वदेवदेवताका) द्वितीयाष्टका भवतिः तत्सम्बन्धाच्चान्येद्युर्द्वितीयान्वष्टका भवति । एवं फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां प्राजापत्या (प्रजापतिदेवताका) तृतीयाष्टकाः परेद्युश्च तदीयान्वष्टका भवति । एवमेव च चैत्रकृष्णाष्टम्यां पित्र्या (पितृदेवताका) चतुर्थी अष्टकाः अन्येद्युश्च तत्सम्बन्धिन्यन्वष्टका भवति नवम्याम् ।

(२) एतानि चाष्टकाकर्माणि सकृदेव भवन्ति न तु प्रतिवर्षम् ; संस्कारकर्मत्वात् । शास्त्रे चत्वारिंशत्संस्कारकर्माण्यभिहितानि, तेषां मध्ये येषामभ्यासः श्रूयते तान्येवासकृद्भवन्ति नेतराणि ।

(३) अष्टकाशब्दः कर्मवचनोऽपि कालोपलक्षकस्तेनैतानि कर्माण्यष्टम्यामेव भवन्ति ।

अष्टकाकर्मपद्धतिः

तत्र मार्गशीर्ष्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टम्यां मातृपूजापूर्वाभ्युदयिकं श्राद्धं विधाय आवसथ्याग्नौ कर्म कुर्यात् ।

केषाञ्चित् पक्षे अष्टकाकर्मसु आभ्युदयिकं नास्ति; 'नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धम्' इति वचनात् ।

तत्र ब्रह्मोपवेशनादिप्राशनान्ते विशेषः—तण्डुलानन्तरं पूर्वमौपासनाग्निसिद्धस्यैवापूपस्यासादनम्, प्रोक्षणं च प्रोक्षणकाले । तत आज्यभागान्तं कृत्वा 'त्रिꣳशत्स्वसारः' इत्येवमाद्या दशाहुतीर्हुत्वा स्थालीपाकेन 'शान्ता पृथिवी०' इत्यादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैश्चतस्र आहुतीर्हुत्वा अपूपात् 'इन्द्राय स्वाहा' इत्येकामाहुतिं दत्त्वा स्थालीपाकादपूपाच्च स्विष्टकृतं जुहोति तद्यथा—

आज्यभागानन्तरम्—

(१) 'त्रिꣳशत्स्वसार उपयन्ति निष्कृतिꣳसमानकेतुं

प्रतिमुञ्चमानाः, ऋतूꣳस्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्ये छन्दसः परियन्ति भास्वतीः स्वाहा ॥' इदं स्वसृभ्यः ।

(२) 'ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा ॥' इदं रात्र्यै ।

(३) 'एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् । तेन दस्यून्व्यसहन्त देवा हन्तासुराणामभवच्छचीभिः स्वाहा ॥' इदमष्टकायै ।

(४) 'अनानुजा मनुजमामकर्तः सत्यं वदन्त्यन्विच्छ्ये तत्, भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्यावो अन्यामतिमाप्रयुक्तः स्वाहा ॥' इदं रात्रिभ्यः ।

(५) 'अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्टप्रतिष्ठामविदद्धि गाधं भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्यावो अन्यामतिमाप्रयुक्तः स्वाहा ॥' इदं रात्रिभ्यः ।

(६) 'पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवो नु पञ्च । पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लप्ताः समानमूर्ध्नीरधिलोकमेकꣳस्वाहा ॥' इदं रात्रिभ्यः ।

(७) 'ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषुष्यपामेका महिमानं बिभर्त्ति सूर्यस्यैकाचरति निष्कृतेषु धर्मस्यैकाचरति

निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकां नियच्छतु स्वाहा ॥' इदं रात्र्यै ।

(८) 'या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्यमे सा नः पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तरासमाᳪ स्वाहा ॥' इदं रात्र्यै ।

(९) 'शुक्र ऋषभा नभसा ज्योतिषागाद्विश्वरूपा शबलीरग्निकेतुः । समानमर्थᳪस्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगात्स्वाहा ॥' इदं रात्र्यै ।

(१०) 'ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानामेका सती । बहुधोषौ व्यौच्छत्सा जीर्णा त्वं जरयसि सर्वमन्यात्स्वाहा ॥' इदं रात्र्यै ।

अथ स्थालीपाकेन चतस्र आहुतयः—'शान्ता पृथिवी' इत्यादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं जुहोति । तद्यथा—

(१) 'शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षᳪशन्नो द्यौरभयं कृणोतु । शन्नो दिशः प्रदिश आदिशो नोऽहोरात्रे कृणुतं दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा ॥' इदं पृथिव्या अन्तरिक्षाय दिवे दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यो आदिग्भ्योऽहोरात्राभ्यां च ।

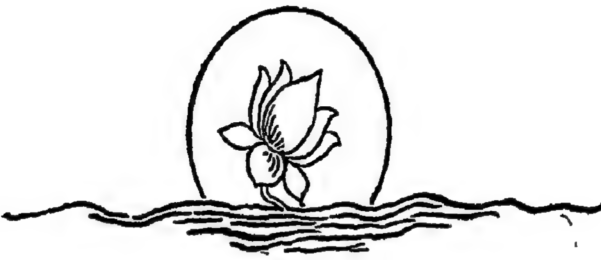
(२) 'आपो मरीचीः परिपान्तु सर्वतो धाता समुद्रो अपहन्तु पापम् । भूतं भविष्यदकृतद् विश्वमस्तु मे ब्रह्माऽभिगुप्तः सुरक्षितः स्याᳪस्वाहा ॥' इदमद्भ्यो मरीचिभ्यो धात्रे समुद्राय ब्रह्मणे च ।

(३) 'विश्वे आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु । ऊर्जं प्रजाममृतं दीर्घमायुः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु नः स्वाहा ॥' इदं विश्वेभ्य आदित्येभ्यो वसुभ्यो देवेभ्यो रुद्रेभ्यो मरुद्भ्यः प्रजापतये परमेष्ठिने च ।

(४) 'अष्टकायै स्वाहा' इदमष्टकायै ।

अथ अपूपादेकाहुतिः—'इन्द्राय स्वाहा ॥' इदमिन्द्राय ।

स्थालीपाकादपूपाच्च स्विष्टकृत् । ततो महाव्याहृत्यादिप्राजापत्यान्तं होमं विधाय प्राशनादि समापयेत् ।



प्रथमान्वष्टकापद्धतिः

(पा. गृ. कां. ३ कं. ३ हरिहरभाष्ये)

यथा अष्टकाकर्माणि चत्वारि भवन्ति सकृच्च संस्कार-कर्मत्वात्; तथा अन्वष्टका अपि चतस्र एव भवन्ति सकृच्च, अष्टकाकर्मसहचारित्वात्तदनन्तरभावित्वाच्च ।

किं च कृष्णादिगणनापक्षेण पौषकृष्णाष्टम्यां प्रथमाष्टका तथा तद्द्वितीयदिने पौषकृष्णनवम्यां प्रथमान्वष्टका । एवं माघकृष्णाष्टम्यां द्वितीयाष्टका तदनु माघकृष्णनवम्यां द्वितीया-न्वष्टका । फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां तृतीयाष्टका, तथा फाल्गुन-कृष्णनवम्यां तृतीयान्वष्टका । एवमेव आश्विनकृष्णाष्टम्यां चतुर्थ्यष्टका, तदनु आश्विनकृष्णनवम्यां चतुर्थ्यन्वष्टका भवतीति ।

एवं पिण्डपितृयज्ञवदित्यतिदेशान्नित्यवैश्वदेवानन्तरमपराह्णे प्राचीनावीती नीवीग्रन्थनं कृत्वा दक्षिणामुखः परिवेष्टितेऽग्निसमीपे अग्नेरुत्तरत उपविश्य आग्नेयादिदक्षिणान्तमग्रदक्षिणमग्निं दक्षिणाग्रैः कुशैः परिस्तीर्य अग्नेः पश्चिमतो दक्षिणसंस्थानि पात्राण्येकैकश आसादयति। तद्यथा स्रुवं चरुस्थालीं वा स्रुक्पक्षे तु स्रुगनन्तरं चरुस्थालीमुदकम् आज्यं मेक्षणं स्फ्यम् उदपात्रम् सकृदाच्छिन्नानि ( ) शाकम्, ( ) दुग्धम्, सक्तून्, अञ्जनम्, अनुलेपनम्, स्रजः, सूत्राणि च। ततः शाकमग्नौ अधिश्रयेत्। शृतं शाकमासादितेन घृतेनाभिघार्य दक्षिणत उद्वास्य पूर्वेणाग्निमानीयोत्तरतः स्थापयेत्। ततः सव्यं जान्वाच्य मेक्षणेन शाकमादाय—

(१) 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इत्येकामाहुतिं हुत्वा इदमग्नये कव्यवाहनायेति त्यागं विधाय पुनर्मेक्षणेन शाकमादाय—

(२) 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इति द्वितीयामाहुतिं हुत्वा 'इदं सोमाय पितृमते' इति त्यागं विधाय मेक्षणमग्नौ प्रास्य—

अग्नेर्दक्षिणतः पश्चाद्वा दक्षिणामुख उपविश्य सव्यं जान्वाच्य भूमिमुपलिप्य तत्र स्फ्येन 'अपहता असुरा रक्षा-

ऽसि वेदिषदः' इति मन्त्रेण लेखां दक्षिणसंस्थामुल्लिख्य तथैव द्वितीयाम्, उदकमुपस्पृश्य 'ये रूपाणि' इति मन्त्रेण उल्मुकं प्रथमलेखाग्रे निधाय तथैव द्वितीयलेखाग्रे निधाय उदकमुपस्पृश्य उदकपात्रमादाय प्रथमलेखायां पितृतीर्थेन—

'अमुकगोत्र ! (अमुकसगोत्र !) अस्मत्पितः ! अमुकशर्मन् ! अवनेनिक्ष्व' इत्येवं पितामहप्रपितामहयोरप्यवनेजनं दत्त्वा द्वितीयलेखायामेवम्—

'अमुकसगोत्रे ! अस्मन्मातः ! अमुकि देवि ! अवनेनिक्ष्व' इत्येवं पितामहीप्रपितामह्योरप्यवनेजनं दत्त्वा सकृदुपमूललूनानि दक्षिणाग्राणि बर्हींषि लेखयोरास्तीर्य तत्रावनेजनक्रमेण—

'अमुकसगोत्र ! अस्मत्पितः ! अमुकशर्मन् ! एतत्ते शाकं स्वधा नमः' इति शाकपिण्डं दत्त्वा पितामहप्रपितामहयोश्चैवं प्रदाय, अपरलेखायाम्—

'अमुकसगोत्रे ! अस्मन्मातः ! अमुकि देवि ! एतत्ते शाकं स्वधा नमः' इति शाकपिण्डं दत्त्वा पितामहीप्रपितामह्योरप्येवं पिण्डद्वयं प्रदाय प्रतिपिण्डदानम्—इदं पित्रे, इदं पितामहाय, इदं प्रपितामहाय, इदं मात्रे, इदं पितामह्यै, इदं प्रपितामह्यै; इति त्यागान् विधाय इच्छया स्त्रीपिण्डसमीपे अवनेजनसकृदाच्छिन्नास्तरणपूर्वकमनपत्येभ्य आचार्यान्तेवासि-

भ्यश्च यथाक्रमं शाकपिण्डान् दद्यात् । चकारादन्येभ्योऽपि सपिण्डादिभ्यो दद्यात् ।

स्त्रीपिण्डसन्निधौ अवटत्रयं खात्वा तेषु—

'अमुकसगोत्रे ! अस्मन्मातः ! अमुकि देवि ! दुग्धं पिब' इत्येकत्रावटे दुग्धं प्रसिच्य, तथैव पितामहीप्रपितामह्योरितरयोरवटयोरासिच्य सक्तूनादाय—'अमुकसगोत्रे ! अमुकि देवि ! तृप्यस्व' इति मातृप्रभृतिभ्यः सक्तून्प्रत्यवटं प्रक्षिप्य ततस्तथैव 'अङ्क्ष्व' इति मातृप्रभृतिभ्योऽञ्जनं दत्त्वा 'अनुलिम्पस्व' इत्यनुलेपनं च दत्त्वा 'स्रजोऽपिनह्यस्व' इति स्रजो दत्त्वा 'अत्र पितरो मादयध्वम्' इत्यर्द्धर्चं जपित्वा पराङ् आवृत्य वायुं धारयन् आतमनादुदङ्मुख आसित्वा तेनैवावृत्य 'अमीमदन्त' इत्यर्द्धर्चं जपित्वा पूर्ववदवनेज्य नीवीं विस्रस्य 'नमो वः' इति प्रतिमन्त्रमञ्जलिं करोति 'गृहान्नः' इत्याशिषः प्रार्थ्य 'एतद्वः पितरो वासः' इति प्रतिपिण्डं सूत्राणि दत्त्वा 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः' इति पिण्डेष्वपो निषिच्य पिण्डानुत्थाप्य उखायामवधाय अवघ्राय सकृदाच्छिन्नान्यग्नौ प्रास्य उल्मुकं प्रक्षिप्य उदकं स्पृष्ट्वा आचम्य आन्वष्टक्यं श्राद्धं कुर्यात् ।

इति प्रथमाष्टकान्वष्टका च ॥



द्वितीयाष्टकापद्धतिः

पौष्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टम्यां द्वितीयाष्टका वैश्वदेवी। तत्र प्रथमप्रयोगे मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं कृत्वा आवसथ्याग्नौ कर्म कुर्यात्। तत्र ब्रह्मोपवेशनं प्रणीताप्रणयनम्, परिस्तरणं च विधाय पात्राण्यासादयेत्। पवित्रच्छेदनानि, पवित्रे द्वे, प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थाली, द्वे चरुस्थाल्यौ, सम्मार्जनकुशाः, उपयमनकुशाः, समिधः, स्रुवः, आज्यम्, अष्टकाचरुतण्डुलाः, शाकीयचरुतण्डुलाः, पूर्वमेव औपासनसिद्धं शाकम्, अथोपकल्पनीयानि उपकल्पयन्ति। हिरण्यशकलानि षट्। इति।

ततः पवित्रकरणादिप्रोक्षणान्ते विशेषः। 'विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि' इति शाकीयचरुतण्डुलानां प्रोक्षणम्। आज्यनिर्वापानन्तरमष्टकाचरुपात्रे तण्डुलान् प्रक्षिप्य शाकीय-चरुपात्रे तण्डुलप्रक्षेपं कुर्यात्। ततो ब्रह्माज्यम्, स्वयम् (यज-मानः) अष्टकाचरुम्, अन्यः पत्नी वा शाकीयचरुं युग-पदग्नौ उदक्संस्थमधिश्रयन्ति। ततः पर्यग्निकरणादि प्रोक्षण्युत्पवनान्तं यजमान एव कुर्यात्।

अथ यजमानः स्वासने उपविश्य उपयमनकुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य ब्रह्मणान्वारब्ध आघारौ हुत्वा अग्नेरुल्मुकमादाय उत्थाय प्रदक्षिणं परिगच्छन् शाकञ्च आज्यम्' 'अग्निं त्रिः पर्यग्नि कृत्वा उल्मुकमग्नौ प्रास्य तावत् प्रतिपरीत्य अप्रादक्षिण्येनागत्य यजमानः पूर्णाहुति-वदाज्यं संस्कृत्य ब्रह्मणानन्वारब्धः 'स्वाहा देवेभ्यः' इत्ये-कामाहुतिं हुत्वा 'इदं देवेभ्यः' इति त्यक्त्वा 'देवेभ्यः स्वाहा' इति तेनैवाज्येन द्वितीयामाहुतिं हुत्वा 'इदं देवेभ्यः' इति त्यक्त्वा अपराः पञ्चाहुतीस्तूष्णीं जुहोति 'इदं प्रजापतये' इति त्यागः पञ्चसु। ततो ब्रह्मान्वारब्ध आज्यभागौ हुत्वा 'त्रिꣳशत्स्वसारः' इति दशाहुतीरनन्वारब्धो हुत्वा अष्टका-चरुणा 'शान्ता पृथिवी०' इत्यादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैश्चतस्र आहु-तीर्हुत्वा शाकहोमाय वामहस्तस्थे स्रुवे आज्यमुपस्तीर्य

हिरण्यशकलमवधाय शाकं द्विधावदाय गृहीत्वा पुनर्हिरण्यशकलमवधाय द्विरभिघार्य 'वह वपां जातवेदः पितृभ्यः' इति प्राचीनावीतिनो दक्षिणामुखस्य शाकहोमः । 'इदं पितृभ्यः' इति त्यागः । 'इदं जातवेदसे' इति वा त्यक्त्वा यज्ञोपवीती भूत्वा उदकं स्पृष्ट्वा अथ प्रधानहोमार्थं स्रुवे आज्यमुपस्तीर्य हिरण्यशकलमवधार्य शाकाद् द्विरवदाय स्रुवे क्षिप्त्वा स्थालीपाकाच्च सकृदवदाय उपरि क्षिप्त्वा तदुपरि हिरण्यशकलं दत्त्वा सकृदभिघार्य 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इति जुहुयात् । 'इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः' इति त्यक्त्वा स्विष्टकृदर्थं स्रुवमुपस्तीर्य हिरण्यशकलं दत्त्वा शाकाद् द्विरवदाय स्रुवे कृत्वा चरुद्वयाच्च सकृत्सकृदवदाय हिरण्यशकलमवधार्य द्विरभिघार्य 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इति जुहुयात् । 'इदमग्नये स्विष्टकृते' इति त्यागः ।

ततो महाव्याहृत्यादिप्राजापत्यान्ता नवाज्याहुतीर्हुत्वा (ब्रह्मान्वारब्धो हुत्वा) संस्रवं प्राश्य ब्रह्मणे शाकदक्षिणां दद्यात् । ततः स्मृत्यन्तरोक्तपञ्चविंशतिब्राह्मणभोजनं च दद्यात् ।

अथ द्वितीयान्वष्टका

अस्यैव शाकस्यावशेषादपरदिनेऽन्वष्टकाकर्म पूर्ववत् ।



अथ तृतीयाष्टका

माघ्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टम्यां तृतीयाष्टका प्राजापत्या, सा यथा प्रथमाष्टका। तत्र अपूपस्थाने कालशाकचरुं तदग्निसिद्धमेव आसादनकाले आसाद्य प्रोक्षणकाले प्रोक्षयेत्। ततोऽपूपयागस्थाने 'प्रजापतये स्वाहा' इति कालशाकं जुहुयात्। शेषं समानम्। कालशाकालाभे वास्तुकम्।

अथ तृतीयान्वष्टका

अन्येद्युः पूर्ववदन्वष्टकाकर्म। इति ॥



अथ चतुर्थ्यष्टका

प्रौष्ठपद्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टम्यां चतुर्थी पित्र्या शाकाष्टका। सा च प्रथमाष्टकावत्। एतावान् विशेषः। चरुस्थालीद्वयम्, तण्डुलानन्तरं कालशाकमासादयेत्। कालशाकचरुसम्बद्धमासादनादि होमान्तं कर्म प्राचीनावीती दक्षिणाभिमुखः कुर्यात्। अन्यद्यज्ञोपवीती पूर्वाभिमुखः कालशाकचरुसम्बद्धं कर्म कृत्वा उदकमुपस्पृशेत्। अपूपहोमस्थाने 'पितृभ्यः स्वाहा' इति शाकचरोरेकामाहुतिं जुहुयात्। इति।

चतुर्थ्यन्वष्टका

प्रातरन्वष्टकाकर्म पूर्ववत्। इति ॥



पृष्ठोदिविविधानम्

अथातो धर्मजिज्ञासा । केशान्तादूर्ध्वमपत्नीक उच्छिन्नाग्निरनग्निको वाप्रवासी ब्रह्मचारी चान्वग्निरिति ग्रामादग्निमाहृत्य पृष्टो दिवीत्यधिष्ठाप्य समित्तमिति द्वाभ्यामुपस्थानं व्याहृतिभिस्त्रिभिश्च सावित्रैः (सावित्र्या) प्रज्वाल्य तां सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानि देव सवितरिति पुनस्त्वेति समिन्ध्य पूर्ववदक्षतैर्हुत्वा पाकं पचेत्तत्र वैश्वदेवं कुर्याद्ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृते, इत्युपस्पृश्य पूर्ववद्बलिकर्म, नैवं कृते वृथा पाको भवति । न वृथा पाकं पचेन्न वृथा पाकमश्नीयादत्र पिण्डपितृयज्ञपक्षाद्याग्रयणानि कुर्यात् ॥ इति कात्यायनोक्तं पृष्ठोदिविविधानपरिशिष्टम् ॥

अथ मन्त्राणां पाठः

तत्र तावदग्न्याहरणमन्त्रः—(१) अन्वग्निरुषसामग्रमक्ख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनुसूर्य्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ॥ यजु० सं० ११। १७॥

अग्निस्थापनमन्त्रः—(२) पृष्टो दिवि पृष्टोअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश॥ व्वैश्वानरः सहसा पृष्टोअग्निः स नो दिवासरिषस्पातु नक्तम्॥ यजु० सं० १८। ७३॥

अग्नेरुपस्थानमन्त्रौ—(३-४) समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन॥ (यजु० सं० ३। १)॥ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य॥ (य० सं० ३। ३)

प्रज्वालनमन्त्राः—ओं भूर्भुवः स्वः। (इति व्याहृतयः) अथ तिस्रः सावित्र्यः—(१) ताᳪ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं व्वृणे सुमतिं व्विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वोऽअदुहत् प्रपीनाᳪसहस्रधाराम्पयसा महीं गाम् (य० सं० १७। ७४)॥ (२) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (य० सं० ३०। २)॥ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि

परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ (य० सं० ३० । ३) ॥
अथाग्नेः समिन्धनम्—पुनस्त्वादित्या रुद्रा व्वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्ब्रह्माणो व्वसुनीथयज्ञैः । घृतेन त्वन्तन्न्वं व्वर्द्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ (य० सं० १२ । ४४) ॥
एवमग्निसम्पत्तिं कृत्वा निरग्निना प्रतिदिनं होमादिकं कार्यम् ।

अत्र हरिहरभाष्यम् । पा० गृ० सू० कां० ३ कं० १६। “अथ पृष्ठोदिविविधानम् । अथ परिशिष्टोक्तं पृष्ठोदिविविधानं वक्ष्यामि । केशान्तादूर्द्ध्वमपत्नीक उत्सन्नाग्निर्निरग्निकोऽप्रवासी ब्रह्मचारी वा मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं कृत्वा अन्वग्निरित्यनयर्चाग्निमाहृत्य पञ्चभूसंस्कारान्कृत्वा पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यामित्यनयर्चाग्नेः स्थापनं व्याहृतिभिः ताँ सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानि देव सवितरित्येताभिः तिसृभिः सावित्रीभिः प्रज्वालनमग्नेः, अथ तस्मिन्नग्नौ अक्षतहोमपञ्चमहायज्ञपिण्डपितृयज्ञपक्षाद्याग्रयणादि कुर्यात् पूर्ववद्गृह्योक्तं पृष्ठोदिविविधानम्”॥ इति॥



नवान्नप्राशनपद्धतिः

(पा० गृ० कां० ३ कं० १).

तत्र शरदि वसन्ते च अनाहिताग्नेर्नवान्नप्राशनं कर्म भवति। प्रथमप्रयोगे मातृकापूजाभ्युदयिके विदध्यात् । आवसथ्याग्नौ ब्रह्मोपवेशनादिप्राशनान्ते विशेषः—नवं स्थालीपाकं श्रपयित्वाज्यभागानन्तरम् आज्याहुतिद्वयं जुहोति । यथा—

(१) 'शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे शतं यो नः शरदो जीजानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा स्वाहा ॥' इदमिन्द्राय ।

(२) 'ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति तेषां योज्यानिमजीजिमावहात्तस्मै नो देवाः परिधत्तेह सर्वे स्वाहा ॥' इदᳫं सर्वेभ्यो देवेभ्यः ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवा द्यावापृथिवी स्थालीपाकेनाग्रयणदेवताः।

(१) 'इन्द्राग्निभ्याᳫं स्वाहा ।' इदमिन्द्राग्निभ्याम् ।

(२) (उपांशु—) 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ।' इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।

(३) (उपांशु—) 'द्यावापृथिवीभ्याᳫं स्वाहा ।' इदं द्यावापृथिवीभ्याम् । इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा,

'स्विष्टमग्ने अभितत् प्रणीहि विश्वांश्च देवः पृतना अभिष्यक्। सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्धेह्यजरं न आयुः स्वाहा' इत्यनेन मन्त्रेण आज्याहुतिं जुहोति। इदमग्नये।

ततः स्थालीपाकात्—'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इदमग्नये स्विष्टकृते, इति हुत्वा, पुनः 'स्विष्टमग्ने०' इत्यादिनाज्याहुतिं जुहोति। इदमग्नये, इति त्यागः।

ततो महाव्याहृत्यादिप्राजापत्यहोमान्तं कृत्वा—

'अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वया वशेन समशीमहि त्वा स नो मयो भूः पितो आविशस्व शन्तोकाय तन्वै स्योने।' इत्यनेन मन्त्रेण संस्रवं प्राश्नाति।

यवान्नप्राशने तु—'एतमुत्यं मधुना संयुतं यवꣳसरस्वत्या अधिवनाय चक्रुषुः, इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।' इत्यनेन यवसंस्रवं प्राश्नाति। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥

इति नवान्नप्राशनपद्धतिः॥



आग्रहायणीकर्मप्रयोगः

(पा० गृ० कां० ३ कं० २)

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यामाग्रहायणीकर्म भवति । तत्र प्रथमारम्भे मातृपूजाभ्युदयिके विधाय आवसथ्याग्नौ ब्रह्मोपवेशनादिप्राशनान्ते विशेषः ।

'शूर्पं सक्तून् उल्काम् उदपात्रं दर्वीं कङ्कतत्रयम् अञ्जनम् उपलेपनं स्रजश्च'—

इत्युपकल्प्य आज्यभागानन्तरम् 'अपश्वेतपदा जहि' इत्याज्याहुतिद्वयं श्रवणाकर्मवद्धुत्वा अपराश्चतस्र आहुतीर्जुहोति वक्ष्यमाणैश्चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम् । यथा तावद्द्वे आहुती—

(१) 'अपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणी-रिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा ॥' इति मन्त्रेण आज्याहुतिं हुत्वा 'इदं श्वेतपदे' इति त्यागः ।

(२) 'न वै श्वेतस्याध्याचारे हि ददर्श कश्चन श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहा' इति मन्त्रेण आज्याहुतिं हुत्वा 'इदं श्वेताय वैदर्व्याय' इति त्यागः ।

अथ चतस्र आज्याहुतयः—

(१) 'यां जनाः प्रतिनन्दन्ति रात्रीं धेनुमिवायतीम् । संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली स्वाहा ॥' इदꣳ रात्र्यै० ॥

(२) 'संवत्सरस्य प्रतिमा या ताꣳ रात्रीमुपास्महे । प्रजाꣳ सुवीर्यां कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा ॥' इदꣳ रात्र्यै० ॥

(३) 'संवत्सराय परिवत्सरायेडावत्सरायेद्वत्सराय वत्स-राय कृणुते बृहन्नमः तेषां वयः सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहताः स्याम स्वाहा ॥' इदꣳ संवत्सराय परिवत्सरायेडावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय च ॥

(४) 'ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शिवा वर्षा अभया शरन्नः । तेषामृतूनाꣳ शतशारदानान्निवात येषामभये

वसेम स्वाहा ॥' इदं ग्रीष्माय हेमन्ताय वसन्ताय वर्षाभ्यः शरदे च० ॥

ततः स्थालीपाकेन चतस्र आहुतीर्जुहोति । तद्यथा— (१) 'सोमाय स्वाहा' इदं सोमाय० ॥ (२) 'मृगशिरसे स्वाहा इदं मृगशिरसे० ॥ (३) 'मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै स्वाहा' इदं मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै०॥ (४) 'हेमन्ताय स्वाहा' इदं हेमन्ताय० ॥

ततः स्थालीपाकेन स्विष्टकृतं हुत्वा महाव्याहृत्यादि-दक्षिणादानान्ते सक्तुशेषं शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रमणप्रभृतिमार्जन-पर्यन्तं श्रवणाकर्मवत् कृत्वा मार्जनान्ते 'उत्सृष्टो बलिः' इत्युच्चैर्ब्रूयात् ।

ततस्तां रात्रीं वत्सान् स्वमातृभिः सह संसृजेत् ।

॥ इत्याग्रहायणीकर्म ॥



स्रस्तरारोहणकर्म

तत्र प्रथमप्रयोगे मातृपूजाभ्युदयिके विधाय स्रस्तरास्तरणप्रदेशगृहे सर्वमावसथ्याग्निं नीत्वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं स्थापयित्वा अग्नेः पश्चिमायां दिशि कुशैः स्रस्तरास्तरणं कुर्यात्। स्रस्तरस्य स्तरणं अग्निशालाया गृहान्तरं युज्यते, अग्निशालायामौपवसथ्यरात्रिमन्तरेण शयननिषेधात् तस्योपरि नूतनं सकृत्प्रक्षालितम् उदग्दशं वासः संस्तरेत्, अग्निं दक्षिणेन ब्रह्माणमुपवेश्य उत्तरत उदपात्रं शमीशाखां सीतालोष्टम् अश्मानञ्च निधाय स्रस्तरपश्चिमतः स्वामी स्थित्वा तमुत्तरेण पत्नी, तामुत्तरेणापत्यानि यथाकनिष्ठं तत्र गृहपतिरग्निमीक्षमाणो जपति।

'अयमग्निर्वीरतमोऽयं भगवत्तमः सहस्रसातमः। सुवीर्योऽयᳲश्रैष्ठ्ये दधातु नौ' इत्येतं मन्त्रम्। ततः पश्चादग्नेः प्राञ्चमञ्जलिं करोति।

(१) 'दैवीं नावᳲ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमाᳲ स्वस्तये० ॥'

(२) 'सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसं शतारित्राᳲ स्वस्तये ॥'

(३) 'आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मद्ध्वा रजाᳲसि सुक्रतू ॥'

इति तिसृभिर्ऋग्भिः । ततो 'ब्रह्मन् प्रत्यवरोहामि' इति ब्रह्माणमामन्त्र्य 'प्रत्यवरोहध्वम्' इति ब्रह्मणा प्रत्यनुज्ञाताः सर्वे स्नाता अहतवाससः—'आयुः कीर्तिर्यशोबलमन्नाद्यं प्रजाम्' इत्यनेन मन्त्रेण स्रस्तरमारोहयन्त्यधितिष्ठन्ति स्त्रियोऽपि मन्त्रेण ।

तमारुह्य तेषु ये उपनीतास्ते—

'सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिधीयतान्नः । शिवा नो वर्षाः सन्तु शरदः सन्तु शिवाः' इत्यमुं मन्त्रं जपन्ति ।

अथ—'स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरानिवेशनीयच्छानः शर्मसप्रथाः' इत्यनया ऋचा स्वामिप्रभृतयः स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च सर्वे यथोक्तक्रमेण दक्षिणपार्श्वैः प्राक्शिरसः संविशन्ति स्वपन्ति । ततः—'उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्याः सप्तधामभिः' इत्यनेन मन्त्रेणोत्तिष्ठन्ति सर्वे ततः स्रस्तरादुत्तीर्य ब्रह्मानुमन्त्रणप्रत्यवरोहणोपेतजपसंवेशनो-त्थानानि वारद्वयमेव कुर्युः । तत आरभ्य चतुरो मासान् सर्वे अधः शयीरन् । कामतो वा शय्यायाम् । पुनरावसथ्यं पञ्च-भूसंस्कारपूर्वकं स्वस्थाने स्थापयेत् ।

॥ इति स्रस्तरारोहणकर्म ॥



स्वाध्यायविधिः

(सन्ध्योपासनानन्तरम्)

'उपविशेत्—दर्भेषु दर्भपाणिः स्वाध्यायञ्च यथाशक्त्या-दावारभ्य वेदम्' ॥ २ ॥ (पा० गृ० त्रिकण्डिकासूत्रम्)

हरिहरभाष्यम् । 'अथ ब्रह्मयज्ञं कुर्यात् । आसनोपरि न्यस्तेषु प्रागग्रेषु दर्भेषु प्राङ्मुख उपविष्टः पाणिभ्यां दर्भानादाय इषेत्वेत्यादिकस्य खं ब्रह्मान्तस्य माध्यन्दिनीयस्य वाजसनेयकस्य यजुर्वेदाम्नायस्य विवस्वानृषिः वायुर्देवता गायत्र्यादीनि सर्वाणिच्छन्दांसि ब्रह्मयज्ञे विनियोगः— इत्यभिधाय प्रणवं व्याहृतीर्गायत्रीमाम्नायस्वरेणाधीत्य इषेत्वोर्जेत्वेत्यादितो वेदमारभ्यानुवाकशोऽध्यायशो यजुःशो वा संहितां ब्राह्मणं चाध्यायशो ब्राह्मणशो वा प्रणवावसानं यथाशक्ति प्रत्यहमधीयानो मन्त्रं ब्राह्मणं च समाप्य पुनरेवमेवारभ्य समापयेत् । प्रणवव्याहृतिगायत्रीपूर्वकन्तु प्रतिदिनं पठेत् । एवमितिहासपुराणादीन्यपि ब्रह्मयज्ञसिद्धये जपेत् । 'तत्राप्याध्यात्मिकीं जपेत्' इति योगीश्वरेण पृथगभिधानात् । अत्रानध्यायो नास्ति । 'नास्ति नित्येष्वनध्यायः' इति मनुवचनात् । नित्यश्च ब्रह्मयज्ञः ॥

॥ इति ब्रह्मयज्ञविधिः ॥

॥ (स्वाध्यायविधिः) ॥



मातृपूजाप्रयोगः

सर्वकर्मसु प्रथमकर्तव्यो मातृपूजाविधिः । प्रातःकाले स्नातः कृतनित्यक्रियः कुड्ये फलके वा स्थापितरक्षिकासप्तदशतये गणपतिसहितषोडशमातॄः मृत्तिकामयीं श्रियं तदभावे तामपि रक्षिकायां पूजयेत् ॥

तत्र मातरश्च—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिस्तथात्मकुलदेवता ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ॥

तत्र क्रमः । आचम्य प्राङ्मुख उपविश्य प्रथमरक्षिका-
मारभ्य क्रमेण—

गणपतिरसि गौर्यसि पद्मासि शच्यसि मेधासि सावि-
त्र्यसि विजयासि जयासि देवसेनासि स्वधासि स्वाहासि मातरः
स्थ लोकमातरः स्थ हृष्टिरसि पुष्टिरसि तुष्टिरसि आत्मकुल-
देवतासि श्रीरसि इत्युक्त्वा अक्षतानादाय पुनः—प्रथमरक्षिका-
मारभ्य ।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ
भूर्भुवः स्वः गौरि इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः पद्मे
इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः शचि इहागच्छ इह तिष्ठ ।
ॐ भूर्भुवः स्वः मेधे इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः
सावित्रि इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः विजये इहागच्छ
इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः जये इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः
स्वः देवसेने इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधे इहा-
गच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहे इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ
भूर्भुवः स्वः मातरः इहागच्छत इह तिष्ठत । ॐ भूर्भुवः स्वः
लोकमातरः इहागच्छत इह तिष्ठत । ॐ भूर्भुवः स्वः हृष्टे इहा-
गच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः पुष्टे इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ
भूर्भुवः स्वः तुष्टे इहागच्छ इह तिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः आत्मकुल-

देवते इहागच्छ इह तिष्ठ। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीः इहागच्छ इह तिष्ठ।

एवं गणपतिसहिता एता मातॄः श्रियं च प्रत्येकमोङ्कार-व्याहृतिपूर्वकमावाह्य स्थापयित्वा—

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो-त्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु ।विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो-३म्प्रतिष्ठ ॥

इत्यक्षतान् विकीर्य एकदैव प्रतिष्ठां कुर्यात् ॥

ततः पाद्यादि गृहीत्वा प्रथमत आरभ्य एतानि पाद्यार्घ्या-चमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॥

ॐ गणपतये नम इदमनुलेपनम्। ॐ गणपतये नमः इमानि पुष्पाणि। ॐ गणपतये नम इति त्रिः पूजयेत् ॥

एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यान्यर्पयेत् ॥

ॐ गणपतये नमः। एवमेव ॐ गौर्यै नमः। ॐ पद्मायै नमः। ॐ शच्यै नमः। ॐ मेधायै नमः। ॐ सावित्र्यै नमः। ॐ विजयायै नमः। ॐ जयायै नमः। ॐ देवसेनायै नमः। ॐ स्वधायै नमः। ॐ स्वाहायै नमः। ॐ मातृभ्यो नमः। ॐ लोक-मातृभ्यो नमः। ॐ हृष्टयै नमः। ॐ पुष्टयै नमः। ॐ तुष्टयै नमः। ॐ आत्मनः कुलदेवतायै नमः। ॐ श्रियै नमः ॥

इति पाद्यादिभिः प्रत्येकमर्चयेत् ॥

ततो गणपतिश्रीसहिताः षोडश मातरः क्षमध्वम् इति विसर्जनम् ॥

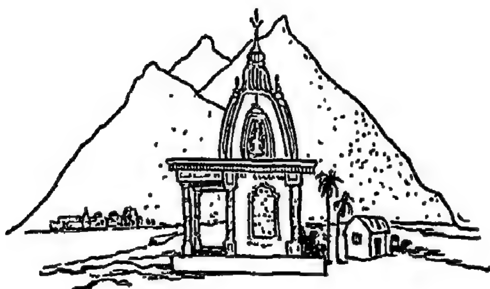
ॐ श्रीर्मयि रमस्वेति ॥

ततो घृतेन भित्तौ पञ्च सप्त वा रेखा उत्तरोत्तरक्रमेण कुर्यात् ॥

ताश्च यत्नेन प्रतिच्छेदनेन मन्त्रेण—

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥

इत्यनेन भित्तौ त्रिः पञ्च सप्त वा घृतधारा दद्यात् ॥



संक्षिप्तनान्दीश्राद्धम्

आचम्य प्राणानायम्य—

कर्तव्येऽस्मिन् पूर्वसङ्कल्पिते कर्मणि साङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धमहं करिष्ये ।

एतच्छ्राद्धीयाग्रभागफलपुष्पाणि यज्ञेश्वराय विष्णवे नमः ॥

यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥

सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ।

अमुकगोत्राः मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः। अमुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः। द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः। सत्यवसुसंज्ञानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानाम् ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा। नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम्। ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ, प्राप्नवाव। अमुकगोत्रा मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा। नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम्। ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ, प्राप्नुवः। नान्दीश्राद्धे अमुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा। नान्दीमुखे क्षणौ क्रियेताम्। ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नवाव। द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम्। ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नवाव। सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। अमुकगोत्राभ्यो मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः

ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः अमुकगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः द्वितीयगोत्रेभ्यः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यः नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तं दास्यमानमन्नममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। अमुकगोत्रा मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तं दास्यमानमन्नममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। अमुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तं दास्यमानमन्नममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तं दास्यमानमन्नममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। स्वस्ति नऽइन्द्रो० इति मन्त्रं पठेत्। अस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः, अमुकगोत्राभ्यः मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यः नान्दीमुखीभ्यः, अमुकगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः नान्दी-

मुखेभ्यः, द्वितीयगोत्रेभ्यः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यः द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।

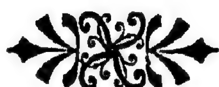
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः ।
एते भवन्तु मे प्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम् ॥

'इडामग्ने पुरुदंशꣳ सनिङ्गोः शश्वत्तमं हवमानय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे' इति वाद्यम् ।

इडामग्नेऽधिधारया रयिम्मास्वान्निष्क्रन्न्पूर्वचितो निकारिणः क्षत्रमग्ने स यमसस्तु तुभ्यमुपसुता वर्त्ततां तेऽअनिष्टतः ॥

नान्दीश्राद्धं सम्पन्नं सुसम्पन्नम् । अस्य नान्दीश्राद्धस्य कर्माङ्गदेवताः प्रीयन्ताम् ॥

॥ इति नान्दीश्राद्धकर्म ॥



हिन्दी भाग

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला

(स्थालीपाककर्मकदम्बकम्)



[हिन्दी]

१—होमके आरम्भके कार्य

(१) कुशोंसे तीन बार वेदी अथवा कुण्डको पोंछना ।

(२) गोबरसे तीन बार वेदीको लीपना ।

(३) स्फ्य अथवा स्रुवसे उत्तरोत्तर तीन रेखा करना ।

(४) उल्लेखनके क्रमसे ही रेखाओंसे मृत्तिका उठाना ।
(अनामिका और अंगूठेसे मिट्टी उठाकर ईशानमें डालना)

(५) जलसे वेदीको तीन बार छिड़कना ।
इस प्रकार पञ्चभूसंस्कार करे ।

(६) वेदीके ऊपर कुछ काष्ठ रखकर अग्निका स्थापन करना । दक्षिण हस्तसे कांस्यपात्र या मृन्मय पात्रसे अपने अभिमुख काष्ठपर अग्निको रक्खे ।

(७) अग्निसे दक्षिणकी ओर ब्रह्माका आसन बिछावे ।

(८) प्रणीतापात्रमें जल भरकर कुशोंसे ढाँपकर अग्निके उत्तरमें कुशोंके ऊपर रख दे (दो आसन हों, प्रथम आसनपर रखकर दूसरेपर रख दे) ।

(९) इक्यासी ८१ वा इक्कीस २१ अथवा सतरह १७ कुशके पत्र लेकर एक चौथाई पत्र (२० या ५ या ४) पत्र पूर्वाग्र करके आग्नेयकोणसे ईशानकोणतक पृथक्-पृथक् करके वेदीके समीप-समीप बिछा दे । उतने ही पत्र ब्रह्माके आसनसे वेदीतक, उतने ही पत्र नैर्ऋत्यसे वायव्यतक और उतने ही वेदीसे प्रणीतापात्रतक बिछा दे । एक पत्रको हस्तमें शेष रखता रहे, हस्त खाली न हो ।

(१०) होममें आवश्यक पात्रोंकी स्थापना करे । अग्निसे उत्तर देशमें पश्चिमसे पूर्वकी ओर या दक्षिणसे उत्तरको पात्र रक्खे । सब पात्र पङ्क्तिबद्ध हों । पात्रोंकी स्थापना पूर्व या उत्तरकी ओर समाप्त हो ।

(११) दो पवित्र बनावे । तीन दलकी कुशासे बराबरके दो पत्तोंको निकाल ले, कोई-से पत्रके भीतर अङ्कुर न हो । उन दो पत्तोंके अग्रोंको बराबर पकड़कर अग्रोंकी ओरसे ही तीन कुशोंसे प्रादेशमात्र (१० अङ्गुल लंबे) काट ले । वे दो दल प्रादेशमात्र लंबे पवित्र होते हैं । मूलकी ओरके भागोंको त्याग कर दे ।

(१२) प्रोक्षणीजलका संस्कार करे । प्रणीतापात्रसे तीन बार चुल्लकसे प्रोक्षणीपात्रमें जल छोड़े । उस जलको पवित्रसे तीन बार ऊपरको उछाल दे ।

(१३) पात्रोंको स्थापनके क्रमसे प्रोक्षणीजलसे प्रोक्षण कर दे ।

(१४) आज्यस्थाली (काँसीके कटोरे) में घृत रख दे ।

(१५) घृतको अग्निके ऊपर रख दे ।

(१६) उल्मुक (गुदीड़े) को घृतके ऊपर फिराकर अग्निमें छोड़ दे ।

(१७) स्रुवको तीन बार अग्निमें ऊपरसे तपा दे ।

(१८) संमार्जनकुशोंसे स्रुवका मार्जन करे ।

(१९) स्रुवको जलसे छिड़क दे ।

(२०) स्रुवको फिर उसी प्रकार तपावे ।

(२१) अपने दक्षिणकी ओर स्रुवको कुशपर रख दे ।

(२२) घृतको अग्निसे उतार ले ।

(२३) घृतको पवित्रोंसे तीन बार ऊपरको उछाल दे ।

(२४) घृतको भले प्रकार देख ले । कोई केश, कीट आदि उसमें हो तो उसे निकाल दे ।

(२५) प्रोक्षणीजलको उसी प्रकार फिर संस्कार करे ।

(२६) बायें हाथमें उपयमन कुशोंको ले लेवे ।

(२७) खड़ा होकर दक्षिण हस्तसे अग्निमें तीन समिधोंको छोड़ दे ।

(२८) अग्निके चारों ओर प्रोक्षणीपात्रसे जलकी धारा कर दे ।

(२९) इसके अनन्तर होम करे ।

(३०) सर्वत्र होममें यही विधि है ।



२–अग्निका आधानकाल

(१) आश्वलायन आदि गृह्यकारोंके मतमें विवाहका अग्नि ही गृह्य अग्नि है। क्योंकि वे विवाहहोमको ही दार (पत्नी) और अग्निका संस्कारक मानते हैं। उनको पुनः अग्निके स्थापनकी आवश्यकता ही नहीं है।

किन्तु हमारे मतमें—

(२) अनेक भाइयोंको धनविभागकालमें आधानका अधिकार होता है।

(३) भ्रातृरहितको विवाहकालमें ही अधिकार हो जाता है और वह चतुर्थीकर्मके अनन्तर होता है। क्योंकि चतुर्थीकर्मसे पहले पत्नीमें भार्यात्व नहीं आता है और आधानमें भार्यासहितको ही अधिकार है। ऐसी व्यवस्था है।

आधानका मुहूर्त्त

(१) अयन—उत्तरायण । अर्थात् मकर आदि छः राशियोंपर सूर्य रहनेतक छः मास ।

(२) नक्षत्र—कृत्तिका, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, ज्येष्ठा और पुष्य ।

(३) तिथियाँ—रिक्ता (४, ९, १४) वर्जित ।

(४) ग्रहोंकी वर्जितस्थिति—गुरु और शुक्रका अस्त, वृद्धत्व, और शिशुत्व । चन्द्र, मङ्गल, गुरु और शुक्र इनकी नीच राशिमें स्थिति और शत्रुकी राशिमें स्थिति एवं दूसरे ग्रहोंसे विजितत्व ।

लग्नशुद्धि

(१) कर्क, मकर, मीन, कुम्भ ये राशियाँ और इनके नवांशक वर्जित हैं । इसी प्रकार लग्नमें चन्द्र वर्जित है । शुक्र भी लग्नमें वर्जित है ।

(२) सूर्य चन्द्र बृहस्पति मङ्गल ये नवम पञ्चम स्थानमें हों, बुध शुक्र शनि राहु और केतु तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशम स्थानमें हों, तथा आधान करनेवालेकी जन्मराशि और जन्मलग्नसे अष्टम राशि शुद्ध हो, ऐसे लग्नमें आधान करे ।

यागकर्तृत्वयोग

(१) गुरुसे युक्त धनुः राशि लग्नमें हो ।

(२) मङ्गल मेष राशिमें हो ।

(३) आधानलग्नमें मङ्गल हो।

(४) आधानलग्नसे सप्तम स्थानमें मङ्गल हो।

(५) चन्द्र छठे अथवा तीसरे अथवा ग्यारहवें स्थानमें हो, ये तीन योग हैं।

(६) सूर्य छठे अथवा तीसरे अथवा ग्यारहवें स्थानमें हो, ये तीन योग हैं।

ऐसे लग्नमें आधान करनेवाला यजमान निश्चय ही अग्निहोत्रका करनेवाला और ज्योतिष्टोम आदि यागोंका करनेवाला हो।

यहाँ यह व्यवस्था है—

(१) पाणिग्रहणकालके नियत होनेसे उस समय आधानके लिये मुहूर्त्त नहीं देखा जाता।

(२) पिता आदिके साथ जिस कालमें धनविभाग हो गया, उस कालमें यथाकथंचित् व्यतीपात, भद्रा आदि दोषोंको बचाकर आधान कर लेना ही चाहिये। उस समय उत्तरायण आदि कालकी अपेक्षा नहीं।

(३) यदि पाणिग्रहणकालमें अथवा धनविभागकालमें विघ्नके कारणसे आधान नहीं किया गया हो, तो कालशुद्धि पूर्वोक्त प्रकारसे करना ही चाहिये।

(४) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंको वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ये ऋतु सोमयागके अर्थ नियत ही हैं, अतः

इनको उत्तरायण आदिका विचार नहीं है, तथापि शुक्रास्त आदि दोषोंके निवारणके लिये मुहूर्त्तका विचार करना ही चाहिये।

(५) किन्तु जिन आचार्योंके मतमें श्रद्धाके उदयमें ही आधान करना चाहिये, ऐसा पक्ष है, उनको सोमयागके अर्थ ही श्रद्धाका उदयकाल है, अतः यथाकथंचित् पञ्चांगशुद्धि करके आधान है। किन्तु ऋतु, नक्षत्र और वार आदिकी प्रतीक्षा नहीं।

(६) 'वाजपेयेन यजेत' इत्यादि वाक्यसे वाजपेय आदि यागोंका शरद् आदि ऋतुविशेष विहित है, अतः उत्तरायणकी प्रतीक्षा न करके शुक्रास्त आदि दोषोंको बचाकर आधान कर लेना चाहिये।

यहाँ यह निर्णय है—

(१) जहाँ कालके नियमसे आधान आदि विहित है वहाँ मुहूर्त्तका विचार नहीं करना।

(२) किन्तु जहाँ कालके नियमका अभाव है, वहाँ मुहूर्त्तविचार आवश्यक है।



३--प्रथम अग्न्याधानमें कालातिक्रम होनेपर प्रायश्चित्त

(१) जितने वर्ष अग्निके बिना बीते हों, उतने ही कृच्छ्र करे और विधिवत् होमके द्रव्यका दान करे। *

पूर्व-पूर्व प्रायश्चित्तके अनुष्ठानकी अशक्ति होनेपर अनुकल्प

(२) प्राजापत्यव्रतके अनुष्ठानकी शक्ति न होनेपर प्रतिप्राजापत्य एक-एक गौका दान करे।

(३) गोदानकी शक्ति न हो, तो बीते हुए वर्षोंकी संख्यासे गोमूल्यके रूपसे निष्क ४) रु० का दान करे।

(४) गोमूल्यके रूपसे निष्कदानकी शक्ति न हो, तो वर्षोंकी संख्यासे आधे निष्कका दान करे।

---

* यावन्त्यब्दान्यतीतानि निरग्नेर्विप्रजन्मनः।
तावन्ति कृच्छ्राणि चरेद्धोम्यं दद्याद् यथाविधि॥
इति वचनात्।

(५) गोमूल्यके रूपसे आधा निष्क भी न दे सके, तो निष्कका चौथा भाग वर्षसंख्यासे दान करे ।

(६) निष्कके चौथे भागके दानकी शक्ति न हो, तो बारह ब्राह्मणोंको भोजन दे (वर्षोंकी संख्यासे) ।

(७) बारह ब्राह्मणोंको भोजन देनेकी शक्ति न हो, तो दश सहस्र १०००० गायत्री जप करे ।

(८) अथवा गायत्री मन्त्रसे तिल-घृतसे सहस्र १००० होम करे ।

इन कल्प-अनुकल्परूप प्रायश्चित्तोंमेंसे अपनी शक्तिके अनुसार कोई-सा प्रायश्चित्त कर लेनेके पश्चात् सायंप्रातः होमका द्रव्य प्रतिदिनकी चार आहुतियोंकी बराबर बीते हुए दिनोंकी गणना करके ब्राह्मणोंको दे दे ।

पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंके संकल्प

(१) गृह्य अग्निके आधानके मुख्य कालसे बीते हुए इतने वर्षोंतक निरग्नित्वसे उत्पन्न पापकी निवृत्तिके लिये इतने प्राजापत्य व्रत करूँगा ।

(२) उसकी शक्ति न होनेपर प्राजापत्यके बदलेमें प्रतिप्राजापत्य एक-एक गो ब्राह्मणोंके अर्थ दान करता हूँ ।

(३) आवसथ्याधानके मुख्य कालसे गत इतने वर्षोंके निरग्नित्वसे उत्पन्न दुरितकी निवृत्तिके लिये प्राजापत्यके प्रत्याम्नाय-

रूपमें प्रतिप्राजापत्य इतनी गौओंका मूल्य इतना सुवर्ण ब्राह्मणोंके अर्थ देता हूँ ।

(४) उसी प्रकार प्राजापत्यके प्रत्याम्नायके रूपमें इतने ब्राह्मणोंको भोजन कराऊँगा ।

(५) आवसथ्याधानके मुख्य कालसे बीते हुए इतने वर्षतक निरग्नित्व दोषके दूर करनेके अर्थ इतने प्राजापत्योंके प्रत्याम्नायमें गायत्रीके इतने अयुत १०००० जपूँगा ।

(६) उसी प्रकार इतने तिल-घृतकी आहुतियोंके सहस्र १००० होम करूँगा ।

प्रायश्चित्त करके होमद्रव्यका दान करे

(१) आवसथ्याधानके मुख्य कालसे बीते हुए इतने वर्ष निरग्नित्वसे उत्पन्न दोषकी निवृत्तिके लिये इतने दिनोंके सायं-प्रातः होमद्रव्य इतना दही, चावल, यव इनमें कोई-सा द्रव्य ब्राह्मणोंको देता हूँ ।

(२) उसका मूल्य इतना ब्राह्मणोंके अर्थ देता हूँ ।

यहाँ यह विशेषरूपसे याद रखना चाहिये कि प्रतिदिनके होमद्रव्यके दान कर देनेपर पक्षादि होमके द्रव्यके दानकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि शास्त्रमें होमद्रव्यके दानकी ही विधि है ।



४—पुनराधानके निमित्त

(१) जिन यजमान और पत्नीने आवसथ्याधान कर लिया है, वे दोनों यदि ग्रामसीमाको उल्लङ्घन करके एक रात्रि निवास करें, तो प्रातःकाल वहाँ आकर अग्निका मन्थन करके उक्त विधिसे ब्रह्माके उपवेशन आदि ब्राह्मण-भोजन-पर्यन्त आधान करें। किन्तु यदि होमका लोप हो गया हो, तो एक तन्त्रसे सायं-प्रातर्होम करें। और बहुत होमोंका लोप होनेपर भी ऐसा ही करें।

द्वितीयादि विवाहके विषयमें—

(२) यदि दारसहित कृताधान यजमान प्रजार्थी अथवा कामार्थी विवाह करे तो और अरणिएँ सम्पादन करके प्रातर्होम करके दिवाविवाह करके—

(क) चतुर्थीकर्मतक होमका त्याग करके उसके अन्तमें अतिक्रान्त होमोंके द्रव्यका दान करके पाँचवें दिन यथोक्त विधिसे पुनराधान करे, यह एक पक्ष है।

(ख) प्रातर्होम करके अनन्तर दिवाविवाह करके और सद्यः चतुर्थीकर्म करके उसी दिन आवसथ्याधान करे, यह दूसरा पक्ष है।

नोट—(क) यहाँ दोनों पक्षोंमें पहली अरणियोंको फाड़कर आवसथ्य अग्निमें दाह करना, और अन्य अरणियोंमें आधान करना, तथा पात्र वे ही रहेंगे।

(ख) दारसहितको पुनः दारकरणमें पुनराधानका अभाव तो केवल सामवेदियोंको है।

(३) पत्नीमरणमें—

(क) अनेक पत्नीवालेको एक पत्नीके मरणमें अरणिएँ और पात्रोंके सहित आवसथ्यसे उसका दाह करके आशौचके अन्तमें पुनराधान है।

(ख) किन्तु एकपत्नीककी पत्नीके मरणमें विवाह करनेके पश्चात् चतुर्थीकर्मके अनन्तर पुनराधान है।

(४) अग्निनाशमें—अग्निके शान्त होनेपर पुनराधान है।

(५) प्रवासमें—दो होमकालोंके अतिक्रममें गृहपति प्रवासमें रहे और प्रमादसे पत्नी भी ग्रामान्तरमें वास करे तो पुनराधान है।

(६) यजमान घरमें रहे और पत्नी प्रवासमें जाकर होमकालसे पहले न आवे तो पुनराधान है।

(७) कोई आचार्य—ज्येष्ठा (बड़ी) पत्नी अग्निके समीपमें रहे और अन्य पत्नियाँ पतिके सहित अथवा केवल पत्नियाँ ही कार्यवश ग्रामान्तरमें स्थित रहें अथवा पति अग्निके समीपमें रहे और सब पत्नियाँ ग्रामान्तरमें चली जावें तो अग्निका नाश नहीं होता ऐसा कहते हैं।

(८) (क) अग्निके बिना पत्नी समुद्रगामिनी नदीका उल्लङ्घन करे,

(ख) पतिसे रहित अग्निके सहित भयके बिना पत्नी सीमाका लङ्घन करे,

(ग) कर्मके लिये आहरणसे अन्यत्र शकटके बिना अग्निको ले जानेसे पुनराधान * है शम्यापरासके पश्चात् तीन बार उच्छ्वास लेनेपर प्रत्यक्ष अग्निका हरण हो जानेपर,

(घ) अग्निके नाश हो जानेपर मन्थन किये जाते हुए दृष्ट अग्निका मन्थनयन्त्रसे उठानेके पश्चात् नाश हो जानेसे,

(ङ) एक वर्षतक यजमान होम न करे,

तो पुनराधान होता है। और वह पुनराधान प्राजापत्य या ब्रह्मकूर्च दोनोंमें एक प्रायश्चित्तके करनेके पश्चात् एवं पत्नीको पादकृच्छ्र करनेके पीछे पुनर्विवाहके प्रकारसे होता है, यह जानने-योग्य है।

(९) (क) जलसे अग्निका उपशमन हो जावे,

(ख) छींकेके द्वारा अग्निका उद्वहन करनेसे,

(ग) प्रत्यक्ष अथवा अरणिसमारोपित अग्निका एक नामवाली सौ योजन बहनेवाली नदीके ऊपरसे जानेपर,

---

* अनो विना समारूढमूर्ध्वं शम्यापरासनात् ।
हृतोऽग्निर्लौकिको ज्ञेयः श्रुतौ सर्वत्र दर्शनात् ॥ (गदाधरभाष्य)

(घ) योजनसे अधिक बहनेवाली नदीका संतरण होनेपर,

(ङ) पत्नी और यजमानके अन्वारम्भ (गठजोड़े) के बिना सर्वत्र सीमाके लङ्घनसे अथवा आद्यन्त सीमाके लाँघनेसे,

(च) सूकर गर्दभ काक शृगाल कुत्ता मुरगा वानर शूद्र अन्त्यज महापातकी मुरदा सूतिका रजस्वला रेत मूत्र मल मेदा आँसू कफ रक्त राध अस्थि मांस मज्जा मद्य आदि अपवित्र वस्तुओंसे प्रत्यक्ष अथवा अरणिमें समारोपित अग्निका स्पर्श होनेसे,

(छ) तीन पक्षोंतक निरन्तर पक्षहोम न करनेसे पुनराधान होता है ।

(१०) (क) अग्निके अपहरणमें—

(ख) प्रकट होनेसे पीछे अथवा पूर्व अग्नि शान्त हो जानेपर अग्निका मन्थन आरम्भ हो गया हो और अग्निका जन्म न हुआ हो, तो लौकिक अग्नि ब्राह्मणका दक्षिण हस्त बकरीका दाहिना कान कुशका गुच्छ या जल इनमें एक वस्तुका अग्निके स्थानमें सम्बन्ध न करनेकी अवस्थामें सूर्य अस्त हो जाय या उदय हो जाय तो पुनराधान होता है ।

(११) अग्निके नाशकी भ्रान्तिसे अग्निका मन्थन करके मथित अग्निको 'अयन्ते योनिः'* इस मन्त्रसे अरणियोंमें समारोप

---

* अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥

करके पूर्व अग्निमें होम आदि कार्य करे। (यहाँ पुनराधान तथा प्रायश्चित्ताचरण नहीं है।)

(१२) किन्तु जब लौकिक आदि किसी अग्निकी स्थापना करके, होम करके, मन्थन प्रारम्भ हो जानेपर दूसरे अथवा तीसरे होमकालसे पूर्व अग्निका जन्म न हो, तो पुनराधान होता है।

(१३) जिन अरणियोंमें अग्निका आरोप किया गया हो उन दोनोंका अथवा उनमें एकका नाश हो जाय तो पुनराधान हो।

(१४) किन्तु जिन अरणियोंमें अग्निका आरोप नहीं हुआ हो, उनमें एकका विनाश हो जाय तो दूसरीका छेदन करके मन्थन होता है। नष्ट अरणिका आवसथ्यमें दाह कर देना प्रतिपत्ति (उपयोग) है।

(१५) जिस कालमें जन्तुभक्षणसे अथवा मन्थन करनेसे अरणियाँ मन्थनके अयोग्य हो जावें उस समय अन्य अरणियाँ सम्पादन कर, दर्शपक्षादि कर्म करके जीर्ण दोनों अरणियोंको फाड़कर उस अग्निमें जलाकर, दक्षिण हस्तसे नूतन उत्तर अरणिको बायें हस्तसे अधर अरणिको ग्रहण करके दीप्त अग्निमें धारण करता हुआ—

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रविशस्व योनिमन्यां देवयज्यां वोढवे जातवेदः। अरण्या अरणिमनुसंक्रमस्व जीर्णां तनुमजीर्णया निर्णुदस्व।

'अयं ते योनिर्ऋत्विय०' इन दोनों मन्त्रोंको जपकर, मन्थन-यन्त्रको रखकर अग्निका मन्थन करके भूसंस्कारपूर्वक स्थानमें रखकर पूर्णाहुतिके समान आज्यका संस्कार करके अनादिष्ट होम करे।



५--आवसथ्याधानपद्धति

(१) आवसथ्य अग्निको आधान करनेवाला कथित कालके उल्लङ्घन न होनेकी अवस्थामें अग्न्याधानके लिये जो मास तिथि नक्षत्र वार आदि उपदिष्ट हैं, उनमें इष्टकालमें प्रातः-स्नान करके अच्छे प्रकारसे हाथ पैर धोकर यथाविधि आचमन कर, पत्नीसहित गोमयसे लिपे हुए शुद्ध स्थानमें सुन्दर आसनपर बैठकर, 'अद्येह०' इत्यादि देशकालका स्मरण करके, 'आवसथ्याग्निमहमाधास्ये' (मैं आवसथ्य अग्निका आधान करूँगा) ऐसा संकल्प करे।

(२) फिर मातृपूजा करके यथोक्तविधिसे नान्दीश्राद्ध करे।

(३) छन्द और ऋषियोंका स्मरण। 'इषे त्वा' इत्यादि 'खं ब्रह्म' इस मन्त्रतक।

---

१. यह शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीयसंहिताके पहले अध्यायका पहला मन्त्र है।

(४) तदनन्तर अपने शाखाके पढ़े हुए कर्मोंमें तत्त्वके जाननेवाले ब्राह्मणकी गन्ध पुष्प माला वस्त्र अलंकार आदिसे पूजा करके—अमुक गोत्र अमुक शर्मा अमुक वेदपाठी अमुक शाखापाठी आवसथ्याधान करनेके लिये कृत अकृत कर्मके अवेक्षकके रूपसे इन चन्दन पुष्प अक्षत वस्त्र अलंकारोंसे तुम ब्राह्मणको मैं स्वीकार करता हूँ।

(५) उस ब्राह्मणको 'मैं स्वीकृत हुआ' ऐसा कहना चाहिये।

(६) कोई आचार्य ब्राह्मणको मधुपर्कसे अर्चन करते हैं। क्योंकि वह भी ऋत्विज् है।

(७) फिर यजमान पत्नीसहित अहत वस्त्रोंको पहनकर, अग्न्याधानके स्थानमें वेदीको उपलेपन कर, पञ्चभूसंस्कारोंको करके, उस स्थानको अहत वस्त्रसे ढाँपकर ब्रह्माके साथ मृत्तिकासहित स्थाली लेकर ब्राह्मणोंके सहित वेदघोष मङ्गलगीत बाजे-गाजेसे उत्साहित होकर जिसके बहुत पशु हों या पशुओंसे समृद्ध वैश्य (तृतीय वर्णके) घरसे उसके अलाभमें गोभिल आदि सूत्रोंके वचनसे भ्राष्ट्रगृह (भड़भूजेके घर) से, अम्बरीष (पीलवान) के घरसे, बहुयाजी (पाधे) ब्राह्मणके घरसे अथवा जिसकी रसोईमें बहुत अन्न बनता हो ऐसे ब्राह्मणके घरसे, स्थाली (हँड़िया) में अग्नि लेकर उसी प्रकारसे घरमें आकर परिसमूहन

आदि पञ्चभूसंस्कारोंसे संस्कृत स्थण्डिल (वेदी) पर पूर्वाभिमुख बैठकर अपने सामने अग्निको स्थापन कर दे।

(८) वहाँ ब्रह्माके उपवेशनसे आरम्भ कर देवताभिधान पर्युक्षण-पर्यन्त करे।

(९) स्रुव लेकर दाहिना गोडा नवाकर ब्रह्मासे अन्वारम्भ किये हुए—

(१) 'प्रजापतये स्वाहा'

इस मन्त्रसे मनसे ध्यान करता हुआ पूर्वकी ओर ऊर्ध्व सीधा अविच्छिन्न धारासे घृतसे अग्निके उत्तर प्रदेशमें पूर्व आघारको छोड़ता है। 'इदं प्रजापतये न मम' इस वाक्यसे त्याग करके, होमसे बचे हुए घृतको दूसरे पात्रमें छोड़ दे। उसी प्रकारसे—

(२) 'इन्द्राय स्वाहा'

इस मन्त्रसे अग्निके दक्षिण प्रदेशमें उत्तराघार 'इदमिन्द्राय न मम' ऐसा त्यागवाक्य बोलकर होम करे।

(३) 'अग्नये स्वाहा'

इस मन्त्रसे अग्निके उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धमें 'इदमग्नये न मम' ऐसा त्यागवाक्य कहकर आग्नेय आज्यभाग होम करे।

(४) 'सोमाय स्वाहा'

इस मन्त्रसे अग्निके दक्षिणार्ध-पूर्वार्धमें 'इदं सोमाय न मम' ऐसा त्यागवाक्य कहकर सौम्य आज्यभाग होम करे।

अथवा पूर्वोक्त चारों आहुतियाँ समिद्धतम (अधिक प्रज्वलित) अग्निप्रदेशमें होम करें।

(१०) अष्टर्चहोम। (इस होममें अन्वारम्भ नहीं) मन्त्रोंके ऋषि आदि—

(१) 'त्वन्नो अग्ने०' इस मन्त्रका वामदेव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्नि वरुण दो देवते, प्रायश्चित्त होममें विनियोग है।

(२) 'स त्वन्नो०' इस मन्त्रका वामदेव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्दः, अग्नि वरुण दो देवते, प्रायश्चित्त होममें विनियोग है।

(३) 'इमम्मे०' इस मन्त्रका शुनःशेप ऋषि, वरुण देवता, गायत्री छन्दः, अभिषेकमें विनियोग है।

(४) 'तत्त्वा यामि०' इस मन्त्रका शुनःशेप ऋषि, वरुण देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, अभिषेकमें विनियोग है।

(५) 'अयाश्चाग्ने०' इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि, विराट् छन्दः, अग्नि देवता, प्रायश्चित्त होममें विनियोग है।

(६) 'ये ते शतं०' इस मन्त्रका शुनःशेप ऋषि, जगती छन्दः, वरुण सविता विष्णु विश्वेदेव और मरुत् देवता, प्रायश्चित्त होममें विनियोग है।

(७) 'उदुत्तमं०' इस मन्त्रका शुनःशेप ऋषि, त्रिष्टुप् छन्दः, वरुण देवता, विष्णुक्रम और पाशोन्मोचनमें विनियोग है।

(८) 'भव तन्नः०' इस मन्त्रका गौतम ऋषि (मधुच्छन्दाः वा ऋषि), आर्षी पङ्क्ति० छन्दः, निर्मथ्य और आहवनीय

दो अग्नियाँ देवते, आहवनीयमें मन्यनोत्थ अग्निके प्रक्षेपमें विनियोग है।

(१) त्वन्नोऽअग्ने व्वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। (८)

(२) स त्वन्नोऽअग्ने वमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो व्वरुणꣳरराणो व्वीहि मृडीकꣳ सुहवो नऽएधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। (८)

(३) इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा-चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय न मम। (८)

(४) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरु शꣳसमानऽ-आयुः प्रमोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय न मम। (८)

(५) अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि। अयानो यज्ञं वहास्य यानो धेहि भेषजꣳस्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां न मम। वा इदमग्निभ्यः। (८)

(६) ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे

विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।
केचित् इदं वरुणाय न मम। (८)

(७) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳬश्रथाय।
अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितये स्याम
स्वाहा। इदं वरुणाय न मम। (८)

(८) भव तन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञᳬहिᳬ
सिष्टम्मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः
स्वाहा॥ इदं निर्मथ्याहवनीयाभ्यां न मम॥ (८)

इन आठ ऋचाओंमें एक-एक ऋचासे आठ-आठ घृतकी आहुतियाँ देवे। ये अष्टर्चहोमकी ६४ घृताहुतियाँ होती हैं।

(११) स्थालीपाकहोम

(१) अग्नये पवमानाय स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय न मम।
(२) अग्नये पावकाय स्वाहा। इदमग्नये पावकाय०।
(३) अग्नये शुचये स्वाहा। इदमग्नये शुचये०।
(४) अदित्यै स्वाहा। इदमदित्यै न मम।

इत्यग्न्याधेयदेवताहोमः

(१२) फिर पहलेके समान अष्टर्चहोम करे।

(१३) अनन्तर ब्रह्माके साथ अन्वारम्भ करके स्विष्टकृत् होम करे। उत्तरार्धसे स्रुवके द्वारा चरु लेकर—

'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इदमग्नये स्विष्टकृते०।

अग्निके उत्तरार्धमें होम करे।

(१४) अनन्वारब्ध होम घृतसे

'अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं देवयज्ञ॰स्वाहा वातेधाः स्वाहा ॥' 'इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः०'

इस पूर्वोक्त मन्त्र और त्यागवाक्यसे होम करे।

(१५) ब्रह्माके साथ अन्वारम्भ करके

'भूः, भुवः, स्वः' इन तीन मन्त्रोंसे यथाक्रम होम करे।

'भूः' इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता।

'भुवः' इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि, उष्णिक् छन्द, वायु देवता।

'स्वः' इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, सूर्य देवता और तीनों मन्त्रोंका व्याहृतिहोममें विनियोग है।

(१) ॐ भूः स्वाहा। इदमग्नये०। इदं भूर्वा।

(२) ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे०। इदं भुवो वा।

(३) ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय०। इदं स्वर्वा।

(४) ॐ त्वन्नो अग्ने०।

(५) ॐ स त्वन्नो अग्ने०।

(६) ॐ अयाश्चाग्ने०।

(७) ॐ ये ते शतं०।

(८) ॐ उदुत्तमं०। (पञ्च सर्वप्रायश्चित्तमन्त्राः)

(९) ॐ प्रजापतये स्वाहा।

(१६) ये ९ आहुतियाँ करके और बर्हिर्होम करके, संस्रवका प्राशन करके, आचमन करके, पवित्रोंसे मार्जन करके, पवित्रोंको अग्निमें छोड़कर, प्रणीताजलको अग्निके पश्चिममें छोड़कर, रक्खे हुए पूर्णपात्र तथा वर दोनोंमें एक दक्षिणा ब्रह्माको देकर एक ब्राह्मणको भोजन दान करना ।



(१) चार नान्दीश्राद्ध

आवसथ्य (गृह्य) अग्निके स्थापनके अनन्तर उसी दिन मणिकावधान, पञ्चमहायज्ञ, सायंहोम और प्रातर्होमके निमित्त चार नान्दीश्राद्ध करे ।



नोट—यहाँपर मार्जन, पवित्रोंकी प्रतिपत्ति, बर्हिर्होम और प्रणीताविमोक ये चार पदार्थ भाष्यकारके मतमें गृह्यकर्मोंमें नहीं होते। क्योंकि कोई वचन प्रमाण नहीं है, आवसथ्याधानमें वचन होनेसे बर्हिर्होम होता है। इत्यावसथ्याधानम् ।

६-स्मार्त अग्निमें नित्य होमकी पद्धति

(१) आवसथ्य अग्निके आधानके पश्चात् उसी दिन सायं-प्रात-होंमके निमित्त मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करके सन्ध्यावन्दनके पश्चात् अग्निके समीप जाकर अग्निकी पश्चिम दिशामें पूर्वको मुख करके बैठे।

(२) उपयमन कुश, तीन समिधें, मणिकका जल, दधि आदि होम-द्रव्योंमें एक द्रव्य, अग्निके उत्तरमें पश्चिमसे पूर्वकी ओर यथाक्रम रख दे।

(३) उपयमन कुशोंको बांयें हाथमें लेकर, खड़ा होकर तीन समिधोंको अग्निमें छोड़ दे।

(४) फिर अग्निके चारों ओर जलकी धारा देकर, अपने दक्षिण हस्तके बारह पर्वोंपर दधि, तण्डुल और यव इनमेंसे एक द्रव्य जितना आवे लेकर हस्तसे ही होम करे। अग्निमें—जहाँ अच्छे अङ्गार और ज्वाला हो वहाँ अग्निके मध्यमें आहुति दे।

मन्त्र

(१) अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम। (मध्यमें)

(२) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। (उत्तरमें)

यह दूसरा मन्त्र मनमें उच्चारण करे।

यह सायंकालका होम है।

प्रातर्होम

(१) सूर्याय स्वाहा। इदं सूर्याय। (मध्यमें)

(२) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये।

यह दूसरे मन्त्रसे उसी प्रकार मनसे पूर्व आहुतिसे उत्तरमें छोड़े।

यह प्रातर्होम है।

यदि पत्नी गर्भकी इच्छा करे तो नित्य होमसे पूर्व 'पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ०' इस मन्त्रसे आहुति दे। पति 'इदं मित्रावरुणाभ्यामश्विभ्यामिन्द्राय सूर्याय च' ऐसा त्यागवाक्य कहे।

इति नित्यहोमविधिः।

७-नित्य होमका काल

(१) जबतक आकाशमें सब ओर तारे अच्छी प्रकारसे न दिखायी दें और लाली दूर न हो, तबतक सायंहोम होता है। (छन्दोगपरिशिष्ट)

(२) प्रातर्होम सूर्यके उदयसे पूर्व होता है। वह अनुदितकाल दो प्रकारका होता है। एक वह जिसमें तारे स्पष्ट दिखायी दें और दूसरा वह जो उसके पश्चात् सूर्यके उदयसे पूर्व हो। उस कालको समयाध्युषित कहते हैं।

होमद्रव्य

(१) दही गौका। (२) तण्डुल व्रीहि (धान) (३) अक्षत छिलके समेत यव। यहाँ जिस द्रव्यसे सायंहोम करे उसी द्रव्यसे प्रातर्होम करे। क्योंकि सायंकालसे आरम्भ करके प्रातःकालपर्यन्त एक कर्म होता है, ऐसा वचन है।

इसी प्रकार सायंप्रातर्होम एक ही कर्त्ताको करने चाहिये। क्योंकि 'जो आरम्भ करे वही समाप्त करे' यह न्याय है।

मन्त्रके उच्चारणमें विशेष

(१) सर्वत्र प्रजापतियाग उपांशु (मौनसे) है। स्वाहाकार और त्याग श्राव्य होता है। किन्तु आघार होममें स्वाहा-पर्यन्त भी मानस ही होता है। त्यागवाक्य यजमानको करना चाहिये। इस कारण जब यजमान विदेशमें रहे, उस समय कर्मके कालमें देवताके अनुसार पवित्र होकर आचमन करके पूर्वमुख बैठकर सब कर्मोंमें त्यागवाक्य करता रहे।

गौणहोमद्रव्य

(१) होमद्रव्य जो दही-तण्डुल और यव इनमें किसीका लाभ न हो, तो १ श्यामाक २ नीवार ३ वेणुयव ४ कन्द ५ मूल ६ फल और ७ जल इन सात द्रव्योंमें पहले-पहलेके न मिलनेपर पिछला-पिछला द्रव्य नित्य होममें ले सकता है। कन्द=सूरण आदि। फल=आम्र आदि।



८--पञ्च महायज्ञ

(पा० गृ० कां० २ कं० ९ सू० १)

समावर्त्तन-संस्कारके अनन्तर जो मनुष्य विवाह कर लेता है, उसका पञ्चमहायज्ञोंमें अधिकार है। इस कारण पाँच महायज्ञ 'महायज्ञ' शब्दके वाच्य हैं। अर्थात्—कर्मविशेष पञ्च महायज्ञ हैं।

पद्धति

विवाहके अनन्तर आवसथ्यका आधान करके पञ्च महायज्ञों-के निमित्त मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करके वैश्वदेवके अर्थ पाक करके उसमेंसे पक्व अन्न निकालकर उसपर घृत छोड़कर फिर अग्निके पश्चिममें पूर्वकी ओर मुख करके उपवेशन (ऊर्ध्वजानु बैठ) कर दाहिना गोडा झुकाकर मणिकके जलसे अग्निके चारों ओर कार देकर हाथके बारह पोरवोंपर जितना अन्न (भात) आवे, लेकर गृह्य अग्निमें निम्नलिखित मन्त्रोंसे होम करे—

(१) ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम।

(२) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

(३) गृह्याभ्यः स्वाहा। इदं गृह्याभ्यो न मम।

(४) कश्यपाय स्वाहा। इदं कश्यपाय न मम।

(५) अनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये न मम।

इति देवयज्ञः ॥ १ ॥

इस प्रकार अग्निमें पाँच आहुतियाँ देकर मणिकके समीपमें पूर्वको समाप्त या उत्तरको समाप्त हो, उस प्रकारसे होम किये हुए अन्नसे बचे हुए अन्नमेंसे तीन बलियाँ देवे। जैसे—

(१) ॐ पर्जन्याय नमः। इदं पर्जन्याय०।

(२) ॐ अद्भ्यो नमः। इदमद्भ्यः०।

(३) ॐ पृथिव्यै नमः। इदं पृथिव्यै०।

इस प्रकार देवे।

इसके अनन्तर द्वारशाखाओंमें दक्षिण-उत्तर-क्रमसे दो आहुतियाँ दे। जैसे—

(१) ओं धात्रे नमः। इदं धात्रे न मम।

(२) ओं विधात्रे नमः। इदं विधात्रे न मम।

इसके अनन्तर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें प्रत्येक दिशामें बलि देवे। जैसे—

(१) ओं प्राच्यै नमः। इदं प्राच्यै न मम।

(२) ओम् अवाच्यै नमः। इदमवाच्यै न मम।

(३) ओं प्रतीच्यै नमः। इदं प्रतीच्यै०।

(४) ओम् उदीच्यै नमः। इदमुदीच्यै०।

यह दिशाओंको बलिदान है।

इसके अनन्तर चारों दिशाओंकी बलियोंके मध्य देशमें बलि देवे—

(१) ओं ब्रह्मणे नमः । इदं ब्रह्मणे न मम ।

(२) ओमन्तरिक्षाय नमः । इदमन्तरिक्षाय न मम ।

(३) ओं सूर्याय नमः । इदं सूर्याय न मम ।

इस प्रकार पूर्वको बलिपङ्क्तिकी समाप्ति करे ।

इसके पश्चात् ब्रह्मादिकी बलियोंके उत्तर देशमें पूर्वको समाप्त दो बलियाँ देवे—

(१) ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम ।

(२) ओं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः । इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम ।

इनके उत्तरमें दो बलियाँ देवे—

(१) ओमुषसे नमः । इदमुषसे न मम ।

(२) ओं भूतानां च पतये नमः । इदं भूतानां च पतये न मम ।

इति भूतयज्ञः ॥ २ ॥

इसके पश्चात् ब्रह्मादिकी बलियोंके दक्षिण भागमें अपसव्य होकर दक्षिणको मुख होकर बायें गोडेको झुकाकर पितरोंके लिये एक बलि देवे ।

(१) ओं पितृभ्यः स्वधा । इदं पितृभ्यो न मम ।

इस मन्त्रसे एक पत्र पुटकमें एक बलि देवे।

इति पितृयज्ञः ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर उस पात्रको धोकर निर्णेजन जल (धोनेका पानी) ब्रह्मादि देवताओंको बलियोंके वायव्य कोणमें छोड़ दे—

(१) ओं यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः। इदं यक्ष्मणे न मम।

इस मन्त्रसे त्याग दे ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर गौ और काक आदिके निमित्त बलियाँ देवे। जैसे—

(१) सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥
इदं गोभ्यो न मम।

(२) वायसबलि—
ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या ये नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम्॥
इदं वायसेभ्यो न मम।

(३) श्वबलि—
द्वौ श्वानौ श्यावशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ॥
इदमन्नं श्वभ्यां न मम।

(४) देवादिबलि—
देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगपन्नगाद्याः।

प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
इदं देवादिभ्यः ।

(५) पिपीलिकादिबलि—

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया प्रदत्तं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥
इदं पिपीलिकादिभ्यो न मम ॥

(६) मनुष्ययाग—

इसके अनन्तर पैर धोकर, आचमन करके अतिथिकी प्राप्ति होनेपर पादप्रक्षालनपूर्वक गन्धमाल्य आदिसे पूजा करके, अन्नका परिवेषण करके, 'हन्त तेऽन्नं मनुष्याय' ऐसा सङ्कल्प करके उस मनुष्यको जिमा दे ।

अतिथिके न मिलनेकी अवस्थामें सोलह ग्रास अथवा चार ग्रास परिमित अन्न पात्रमें करके यज्ञोपवीत कण्ठीकृत करके उत्तरको मुख करके बैठकर 'हन्त तेऽन्नमिदं मनुष्याय' ऐसा सङ्कल्प करके किसी ब्राह्मणको दे दे ।

इति मनुष्ययागः ॥ ४ ॥

(७) पाँच नित्यश्राद्ध—

स्वागत-वचनसे छः ब्राह्मणों, दो ब्राह्मणों अथवा एक ब्राह्मणको अर्चन करके पैर धोकर आचमन कराके घरमें ले जाकर कुश ऊपर रक्खे हुए आसनोंपर उत्तर मुख बैठा दे ।

अनन्तर आप आचमन कर प्राङ्मुख (पूर्वमुख बैठकर) पुण्डरीकाक्ष श्रीवासुदेवको स्मरणकर, सावित्रीका जपकर 'अद्य' इत्यादि देश-कालका स्मरणकर, अपसव्य हो दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर बायाँ गोडा नवाकर—

अमुकसगोत्राणाम् अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणां तथा अमुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाम् अमुकामुकशर्मणां नित्यश्राद्धमहं करिष्ये।

ऐसा सङ्कल्प करके ब्राह्मणको भोजन करा दे।

तदनन्तर भिक्षुक आदिको यथायोग्य अन्न देकर बालक, बुड्ढे यथायोग्य भोजन करें। उनके पीछे यजमान, यजमानपत्नी भोजन करें। अथवा पहले यजमान और पीछे पत्नी अथवा उसके अनन्तर अतिथि आदिको भोजन कराके आप भोजन करे फिर पत्नी। इति नित्यश्राद्धम्।

इति पञ्चमहायज्ञाः।

श्राद्धमयूखसे नित्यश्राद्धके प्रमाणवचन

मनुः—

पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यस्तृप्तिमावहन्।
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा॥
पितॄनुद्दिश्य विप्रांस्तु भोजयेद्विप्रमेव वा॥
एकस्यापि विप्रस्य भोजनपर्याप्तस्यान्नस्यालाभे

कात्यायनः—

अदैवं नास्ति चेदन्नं भोक्तुर्भोज्यमथापि वा।

अभ्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि ।
पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदाहरेत् ॥
एतच्च ब्राह्मणाय देयम् ।
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥

इति कूर्मपुराणे ।

इदं च षड्दैवत्यम् ।
एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही ।

इति व्यासोक्तेः ।

हारीतः—
नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घपिण्डादिवर्जितम् ।
प्रचेताः—
नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम् ।
न पिण्डदानं न सुराग्नित्ये कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥
भविष्योत्तरे—
आवाहनस्वधाकारपिण्डाग्नौ करणादिकम् ।
ब्रह्मचर्यादिनियमो विश्वेदेवास्तथैव च ॥
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान् भोज्यमन्नं प्रकल्पयेत् ॥
भोज्यमन्नं स्वस्येति शेषः ।
मध्याह्ने वेदविदुषे दक्षिणां पिण्डवर्जिताम् ।
नित्यश्राद्धे ततो दद्याद् भुङ्क्ते यत्स्वयमेव हि ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणम् ।

९--आवश्यकतामें कर्मोंका गौण काल

(१) मुख्य कालमें जो आवश्यक कर्म न किया जा सके तो गौण कालमें भी वह कर्म करना चाहिये। क्योंकि गौण काल भी वैसा ही है।

(२) प्रातःकालकी आहुतिका काल सायंकालकी आहुतिके कालतक है। और सायंकालकी आहुतिका काल प्रातः-कालकी आहुतिके कालतक है।

(३) पौर्णमासयागका काल दर्शयागके कालसे पूर्वतक है। एवं दर्शयागका काल पौर्णमासयागके कालसे पूर्वतक है।

(४) चातुर्मास्यके वैश्वदेवपर्वका काल प्रघासके कालसे पूर्वतक है और प्रघासयागोंका काल शाकमेधीयपर्वके कालसे पूर्वतक है।

(५) शाकमेधकाल भी शुनासीरीय कालसे पूर्वतक है। एवं शुनासीरीय काल वैश्वदेवके कालसे पूर्वतक है।

(६) श्यामाक (सामक) व्रीहि (धान) और यव, इनमेंसे एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यके कालसे पूर्व-पूर्व यजन करे, किन्तु आग्रहायण-(मार्गशीर्षकी पूर्णिमा) से पीछे नहीं।

(७) दक्षिणायनकी पश्विज्या उत्तरायणसे पूर्व-पूर्व और उत्तरायण-की पश्विज्या दक्षिणायनसे पूर्व-पूर्व करे।

(८) इस प्रकार पूर्व कर्मका उसके मुख्य कालके बादका काल और आगामी कर्मके मुख्य कालसे पूर्व-पूर्व काल गौण काल है।

(९) अथवा कोई आचार्य पूर्व कालके कर्ममें आगामिकर्मके मुख्य कालको भी गौण मानते हैं। अर्थात् पूर्वकालिक कर्म उत्तरकालिक कर्मके मुख्य कालमें भी किया जा सकता है। जैसे प्रातर्होम सायंकालीन होमके मुख्य कालमें भी किया जा सकता है।

(१०) इन गौण कालोंमें विहित कर्म करे। प्रायश्चित्तके प्रकरणमें कहा हुआ प्रायश्चित्त कर ले।

(११) भारद्वाजके भाष्यके अनुसार प्रायश्चित्त न करके भी गौण कालमें नित्येष्टि (दर्श पौर्णमास) और अग्निहोत्र करे (कर्मका लोप न करे)।

(१२) यदि मुख्य कालमें मुख्य साधनका लाभ न हो, उस कालके द्रव्यको मुख्यत्व अथवा गौणता है।

(१३) मुख्य कालको प्राप्त होकर गौण कालकी प्रतीक्षा एक पक्षतक करनेसे होमका फल नष्ट हो जाता है।

(१४) जो मनुष्य पूर्वोक्त रीतिसे गौण कालकी प्रतीक्षा करता है, वह पक्षहोमके विधानपर्यन्त कर्म करके तन्तुमयी इष्टि (प्रायश्चित्त) करे।

(१५) प्रतिदिन वैश्वदेव पाकके अनन्तर पञ्चमहायज्ञका अनुष्ठान करे। किन्तु प्रतिपदाओंमें दर्श पौर्णमासयागोंके अनुष्ठानके पश्चात् पञ्च महायज्ञ करे। क्योंकि—

'पक्षादि कर्मोंमें स्थालीपाक करके दर्श पौर्णमास देवताओंके अर्थ होम करके 'ब्रह्मणे स्वाहा प्रजापतये' इत्यादि। ऐसा सूत्रसे सिद्ध है।



१०--पक्षादिकर्म

(पा० गृ० कां० १ के १२)

(१) प्रथम प्रयोगमें मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करे ।

(२) उड़द, मांस, क्षार, लवण इनको त्यागकर केवल हविष्य अन्न व्रतका भोजन करके रात्रिके समय अग्निके समीपमें पत्नी और यजमान दोनों अलग-अलग सोवें ।

(३) प्रातःकाल स्नान सन्ध्यावन्दनके पश्चात् प्रातःकालका होम करके सूर्यके उदय होनेके पीछे पूर्णमासयागका स्थाली-पाक आरम्भ करे ।

(४) यज्ञशालामें अपना १, ब्रह्माका १, और प्रणीतापात्रके २, इस प्रकार कुशाओंसे चार आसन बिछावे ।

(५) पश्चात् 'मैं' पक्षादि कर्मसे यजन करूँगा, इस कर्ममें तुम मेरे ब्रह्मा हो, इस वाक्यसे यजमान ब्रह्माका वरण करे । ब्रह्मा 'मैं होता हूँ' ऐसा प्रतिवचन दे । पश्चात् नियत आसनपर ब्रह्माको बैठा दे ।

(६) यहाँ पात्रासादनमें वैश्वदेवका अन्न रखना और उनका प्रोक्षण भी विशेष है ।

(७) आज्यभागपर्यन्त यथोक्त कर्म करके, स्थालीपाकको घृतसे सचिक्कण करके स्रुवसे चरु लेकर होम करे।

(१) 'अग्नये स्वाहा' इदमग्नये।

(२) अग्नीपोमाभ्याँ स्वाहा। इदमग्नीषोमाभ्याम्।

(३) पुनः मन्द स्वरसे—'अग्नीपोमाभ्याँ स्वाहा' इदमग्नीपोमाभ्याम्।

(४) ऊँचे स्वरसे—'ब्रह्मणे स्वाहा' इदं ब्रह्मणे।

(५) 'प्रजापतये स्वाहा' इदं प्रजापतये।

(६) विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः।

(७) द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा। इदं द्यावापृथिवीभ्याम्।

होमसे बचे हुएको स्रुवसे अग्निके उत्तरमें पूर्वकी ओर समाप्त करता हुआ—

(१) विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः।

(२) भूतगृह्येभ्यो नमः। इदं भूतगृह्येभ्यः।

(३) आकाशाय नमः। इदमाकाशाय।

इन मन्त्रोंसे तीन बलियाँ देवे।

फिर वैश्वदेवके अन्नसे स्रुवके द्वारा अग्निमें निम्नलिखित मन्त्रोंसे तीन आहुतियाँ देवे।

(१) अग्नये स्वाहा। इदमग्नये।

(२) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये।

(३) विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः।

इसके अनन्तर स्थालीपाकके उत्तरार्द्धसे और वैश्वदेव अन्नके उत्तरार्द्धसे—

(१) अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

इस मन्त्रसे होम करके 'भूः' इत्यादि प्राजापत्यपर्यन्त नव आहुतियाँ होम करे।

संस्रवका प्राशन, मार्जन, पवित्रकी प्रतिपत्ति—प्रणीतापात्रमें रख दे या अग्निमें छोड़ दे। यहाँ प्रणीताका न्युब्जीकरण नहीं है। पीछे होगा।

अनन्तर ब्रह्माको दक्षिणा देनेतक कर्म करके चरुशेष लेकर शालासे बाहर अङ्गणमें गोमयसे पृथ्वीको लेपन करके पूर्वमुख बैठकर स्रुवसे स्त्री आदिके लिये बलि देवे—

(१) नमः स्त्रियै। इदं स्त्रियै।

(२) नमः पुꣳसे वयसे नमो वयसे। इदं पुꣳसे

(३) नमः शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापिनां पतये नमो ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वारण्ये तेभ्यः। इदं ये मे इत्यादि।

(४) नमोऽस्तु बलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजां मे ददतु। इदं स्त्रियै पुꣳसे वयसे शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापिनां पतये ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वारण्ये तेभ्यः। इदमेभ्य इति वा त्यागः।

शेषको प्रणीताके जलसे प्लावन करके, आचमन करके, अग्निके समीप आकर प्रणीताका न्युब्जीकरण करके एक ब्राह्मणके लिये भोजन देता हूँ ऐसा संकल्प करे ।

इति पक्षादिकर्मविधिः ।

अथ दर्शयाग

दर्शयागमें इतना विशेष है कि—'अग्नये, विष्णवे, इन्द्राग्निभ्याम्, इन दर्श-देवताओंके लिये होम और अनुदित सूर्यमें आरम्भ । शेष सब समान है ।

एककर्मत्व

(१) सायंकालके होमसे आरम्भ करके प्रातःकालके होमपर्यन्त एक अग्निहोत्र कर्म है ।

(२) पौर्णमासयाग और दर्शयाग एक कर्म है । यदि कृष्णपक्षमें अग्न्याधान किया हो, तो दर्शयाग न करके ही पौर्णमासीमें पक्षादि कर्मका आरम्भ करे ।

छन्दोगपरिशिष्टका मत

(१) पूर्णाहुतिके पश्चात् दर्श या पौर्णमास जो प्रथम आवे उसीका होम करे, वही आदि है ।

यह वचन पुनराधानके लिये अथवा उसी शाखावालोंके लिये है । प्रथमाधानवालोंके लिये नहीं है ।

पक्षादि शब्दकी व्याख्या (यागकाल)

पक्षोंकी आदि तिथियोंका नाम पक्षादि है । अर्थात् प्रतिपदाओंका नाम पक्षादि है ।

यद्यपि यहाँ पक्षादि शब्द ही दिया है, इससे प्रतिपदाओंमें ही पक्षादि कर्म करना चाहिये तथापि 'सन्धिमभितो यजेत' सन्धिके

दोनों ओर यजन करे, कुछ पर्वकाल (पूर्णिमा अथवा अमा) और कुछ प्रतिपदामें यजन करे ।

पर्वणो यश्चतुर्थोऽश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ।
यागकालः स विज्ञेयः प्रातर्युक्तो मनीषिभिः ॥

पर्वका चौथा भाग अन्तकी १५ घटियाँ और प्रतिपदाके प्रथम तीन भाग (४५ घटियाँ) विद्वानोंने यागकाल प्रातःकाल-वृत्ति कहा है । अर्थात् कुल ६० घटियें यागका काल है, इनमें जो भी घटियाँ प्रातःकालमें रहें चाहे पर्वकी हों या प्रतिपदाकी हों उनमें याग करना । प्रातःकालसे प्रयोजन दिनका प्रथम चतुर्थ भाग है ।

मध्याह्नतक यागकाल

पूर्वाह्णे वाथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते ।
तदैव यागकालः स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥

पूर्वाह्णमें अथवा मध्याह्नमें यदि पर्व समाप्त हो, तो उसी समय यागका काल है । यदि उससे पीछे पर्व समाप्त हो, तो दूसरे दिन यागकाल हो ।

उसमें और विशेष

सन्धिर्यदि पराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेऽहनि ।
कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति ॥

'यदि पराह्णमें सन्धि हो तो दूसरे दिन प्रातःकाल याग करे, ऐसी अवस्थामें यदि प्रतिपदाका चतुर्थ भाग भी आ जावे तो दोष नहीं है ।'

इति यागकालनिर्णयः ।



११--पक्षहोमविधि

(*समासहोमविधि*)

समासहोमके निमित्त

(१) रोगकी अवस्था, (२) यात्रा, (३) राष्ट्रभङ्ग, (४) धनका अभाव, (५) गुरुके घरमें निवास एवं अन्य-अन्य आपदोंमें होमोंका समास होता है ।

होमोंके समासका प्रकार

प्रतिपदाके दिन सायंकालमें एक आहुतिके परिमाणका होम-द्रव्य चौदह (१४) बार एक पात्रमें रखकर 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करके फिर उसी प्रकारसे चौदह आहुतियोंका होम-द्रव्य लेकर 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करे ।

इसी प्रकार प्रातःकालमें भी चौदह (१४) आहुतियोंका द्रव्य एक पात्रमें रखकर 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निमें होम करके फिर उसी प्रकार चौदह आहुतियोंका द्रव्य एक पात्रमें करके 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करे ।

अग्निका अरणिसमारोप

उक्त समासहोमके पश्चात् दक्षिण हस्तसे उत्तर अरणिको और वाम हस्तसे अधर अरणिको लेकर अग्निके ऊपर धारण करता

(२) प्रजापतये स्वाहा ...

हुआ 'अयं ते योनिः' इस मन्त्रसे अग्निका समारोप करके अरणियोंको रख ले।

अमावस्या तथा पौर्णमासीका कार्य

पौर्णमासी अथवा अमावस्या आनेपर प्रातःकाल दोनों अरणियोंमें अग्निका मन्थनकर, कुण्डमें रखकर, अवसरप्राप्त वैश्वदेव आदि कर्म करके सायंकालमें सायंहोम करके और प्रातःकालमें प्रातर्होम करके पक्षादिहोम करे।

इतनेपर भी आपद्निवृत्ति न होनेपर—फिर उक्त विधिसे पक्ष-पक्षमें होमसमास करे। किन्तु तीसरे पक्षमें नहीं।

आपद्के निमित्त दिनसे समासहोम

इसी प्रकार जिस दिन कारण उपस्थित हो जाय, उसी दिनसे गणना करके पर्वकालसे पूर्व-पूर्वकी आहुतियोंकी संख्यासे होमद्रव्य एक पात्रमें करके प्रातर्होमपर्यन्त सब आहुतियोंका होम कर दे। किन्तु दूसरे पक्षके दिनोंके होमोंका समास उसके साथ न करे।

कठश्रुतिके मतसे समासहोमकी वृद्धि

कठश्रुतिके मतमें दो पक्षोंके ही पक्षहोमका नियम नहीं है। किन्तु जबतक आपद्की अनुवृत्ति रहे, तबतक प्रतिपक्ष उक्त प्रकारसे निरन्तर पक्षहोमोंका समास करता रहे। यह एक प्रकार है।

समासहोमका प्रकारान्तर

ऐसा भी एक प्रकार है कि सायंकालमें समिदाधान पर्युक्षण-पर्यन्त करके उसके अनन्तर आहुतिपरिमाण होमद्रव्य 'अग्नये

स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करके फिर उसी प्रकारसे 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करके दो आहुतियोंके परिमाणका होमद्रव्य लेकर 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे एक साथ ही होम कर दे। यह प्रकार सायंप्रातः दोनों कालोंके होमका समास है। इस प्रकारमें दोनों कालोंका होम एक ही कालमें हो जाता है। इतने समाससे ही यदि कार्य चल जाय तो इतना ही समास कर ले अधिकका यत्न न करे। ऐसा आवश्यकतापर्यन्त कर सकता है।

पक्षहोम किये पीछे मध्यमें आपद्की निवृत्ति हो जानेपर सदाकी भाँति सायंप्रातर्होम करने लगे, समासहोमका अनुरोध न करे। अथवा किये हुए होमोंको न भी करे। ऐसा कठशाखाके पढ़नेवाले मानते हैं।

ये समासहोम सायंकालसे आरम्भ और प्रातःकाल समाप्त होनेवाले हैं। यह सामान्य है।

आपद्विशेषमें तो प्रातःकालसे आरम्भ और सायंकाल समाप्त हो जाते हैं। तथा पूर्वाह्न और अपराह्नकालकी अपेक्षा भी नहीं करते। यह ज्ञातव्य है। क्योंकि यह होमोंके समासका कारण आपद् है। स्वाभाविक नहीं है। इसी कारण क्रम, व्युत्क्रम सब होता है।

इति पक्षहोमविधिः।



(२) प्रजापतये स्वाहा ...

१२—मणिकावधान

(१) मणिकावधानके निमित्त मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक-श्राद्ध करे।

(२) अग्निके ईशान देशमें 'देवस्य[1] त्वा०' इस मन्त्रसे अग्नि लेकर 'इदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि' इस मन्त्रसे रख दे।

(३) अनन्तर उसी स्थानमें भाण्डके रखनेके परिमाणसे गढ़ा खोद दे, जिससे कि उसमें मणिक (भाण्ड) टिका रहे।

(४) जलका स्पर्श करके गढ़ेकी मृत्तिका पूर्वकी ओर निकाल दे। उसपर कुश पूर्वाग्र रख दे। एवं यवोंके अक्षत हरिद्रा दूर्वा ऋद्धि-वृद्धिके करनेवाले माङ्गलिक वस्तुओंको रख दे।

(५) उसके ऊपर 'समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भुः' इतने मन्त्रसे मणिकको अवट (गढ़े) में रख दे।

(६) 'आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः' इस मन्त्रसे और 'आपो[2] हि ष्ठा०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे मणिकमें जल भर दे।

(७) अन्तमें एक ब्राह्मणको भोजन करा दे।

इति मणिकावधानम्।



---

१. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥

२. ये तीनों ऋचाएँ प्रसिद्ध हैं। यजुर्वेदीय सन्ध्यामें सर्वत्र मिल सकती हैं।

१३–श्रवणाकर्मप्रयोग

(१) श्रावणकी पूर्णिमामें श्रवणाकर्म होता है। उसके प्रथम प्रयोगमें मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिकश्राद्ध होता है।

(२) आभ्युदयिकके अनन्तर गृह्य अग्निमें श्रवणाकर्म करे।

(३) उसमें यह विशेष है कि ब्रह्माके उपवेशनसे प्राशनान्त कर्ममें (पात्रासादनमें) चरुस्थालीके अनन्तर भर्जन-कर्पर (मिट्टीका ऐसा पात्र जिसमें यव भूजे जायँ) उसके अनन्तर एक कपाल, तथा तण्डुलोंके अनन्तर यव, उसके अनन्तर तण्डुलोंका आटा स्थापन करे। प्रोक्षणकालमें जिस क्रमसे पात्र रक्खे गये हैं उसी क्रमसे उनका प्रोक्षण करे।

(४) पात्रासादनके समीपमें ये वस्तुएँ भी रक्खे। जैसे लोटी, शिलपट्टा, छाज, जलपात्र, दर्वी (चाटू), तीन कंघे, कज्जल, चन्दन और पुष्पमाला।

(५) पवित्रकरण आदि प्रोक्षणीस्थापनपर्यन्त कर्ममें अग्निमें चरुके स्थानसे उत्तर स्थानमें भर्जनपात्र, उसके उत्तरमें कपाल रक्खे।

(६) आज्यस्थालीमें आज्य रखकर चरुपात्रमें प्रणीतापात्रसे जल भरकर तण्डुल छोड़ दे।

(७) ब्रह्माके द्वारा अग्निपर घृत रखवाकर, स्वयं यजमान चरु रक्खे, दूसरे मनुष्यसे भर्जनपात्रमें यव और तीसरे पुरुषके

द्वारा एक कपालपर पुरोडाश रखवाकर उसको कपालके बराबर प्रथन करा दे (फैलवा दे) ।

(८) इसके अनन्तर अग्निपर रक्खे हुए इन हवियोंपर पर्यग्नि-करण (गुदीड़ाका परिभ्रमण) कर दे ।

(९) अनन्तर स्रुवका संस्कार करके घृतको उठवाकर चरुको उठाकर आज्यके उत्तरमें रख दे । इसी प्रकार धानाओंको उठवाकर चरुके उत्तरमें तथा पुरोडाशको उठवाकर धानाओंके उत्तरमें रखवा दे ।

(१०) फिर आज्यका उत्पवन, अवेक्षण, और प्रोक्षणीका उत्पवन करे ।

(११) धानाओंका कुछ भाग छोड़कर बहुत-सा भाग लोढ़ी-शिल-पट्टेसे पीस ले, बचे हुए धानाओंको अलग रख दे । घृतसे सत्तुओंको सचिक्कण करे । इसके अनन्तर उपयमन कुशोंका आदान आदि आज्यभागान्तकर्म करे ।

(१२) अनन्तर दो आज्याहुतियाँ दे—

(१) 'अपश्वेतपदा जहि०' इदं श्वेतपदे ।

(२) 'न वै श्वेतस्याध्याचारे हि ददर्श०' इदं श्वेताय वैदर्व्याय ।

(१३) स्थालीपाकसे चार आहुतियाँ दे—

(१) 'विष्णवे स्वाहा' इदं विष्णवे ।

(२) 'श्रवणाय स्वाहा' इदं श्रवणाय ।

(३) 'श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा' इदं श्रावण्यै पौर्णमास्यै ।

(४) 'वर्षाभ्यः स्वाहा' इदं वर्षाभ्यः ।

नोट—जो मन्त्र पूरे नहीं लिखे गये हैं उन्हें संस्कृत-विभागमें देखिये । सभी प्रकरणोंमें यह सूचना स्मरण रखने योग्य है ।

(१४) धानाओंसे एक आहुति दे—

'धानावन्तं करम्भिणम्' इस ऋचासे। इदमिन्द्राय।

(१५) सत्तुओंसे तीन आहुतियाँ दे—

(१) 'आग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा' इदमाग्नेयपाण्डुपार्थिवानाꣳसर्पाणामधिपतये।

(२) 'श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा' इदं श्वेतवायवान्तरिक्षाणाꣳसर्पाणामधिपतये।

(३) 'अभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपतये स्वाहा' इदमभिभूः सौर्यदिव्यानाꣳसर्पाणामधिपतये।

(१६) स्रुवमें रखकर सारा पुरोडाश होम करे—

(१) 'ध्रुवाय भौमाय स्वाहा' इदं ध्रुवाय भौमाय।

(१७) चरु धाना और सत्तुओंसे उत्तर भागसे किंचित्-किंचित् भाग लेकर स्विष्टकृत् होम करे।

(१) 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इदमग्नये स्विष्टकृते।

(१८) महाव्याहृतिहोम, संस्रवप्राशन, ब्रह्माको दक्षिणादानपर्यन्त कर्म करे।

(१९) होमसे बचे हुए सत्तुओंसे कुछ अंश लेकर छाजमें रखकर जलका पात्र, दर्वी (छोटा-सा चाटू), तीन कंघे, कज्जल, अनुलेपन (चन्दन), पुष्पमाला, ये सब सामग्री ग्रहण करके शालासे बाहर अङ्गणमें निकलकर ब्रह्मा और उल्काधार (जलती हुई लकड़ीको धारण करनेवाले) के साथ अङ्गणमें हस्तपरिमाण वेदी बनाकर उसको स्वयं यजमान गोमय-जलसे लेपन करके, लौकिक अग्निके गुदीड़ेको धारण किये हुए रहनेपर

'मान्तरागमत' बीचसे कोई न निकले, ऐसा प्रैषवाक्य उच्चारण करके चुपचाप वेदीपर जलसे 'आग्नेय' इत्यादि 'अधिपते अवनेनिक्ष्व' इत्यन्त मन्त्रसे एक स्थानमें अवनेजन जल देकर 'श्वेतवायव' इत्यादि 'अधिपतेऽवनेनिक्ष्व' इत्यन्त मन्त्रसे दूसरा अवनेजन जल देकर उसी प्रकारसे 'अभिभूः सौर्य०' इत्यादि मन्त्रसे तीसरा अवनेजन जल सर्पोंको देवे।

(२०) अनन्तर अवनेजनके स्थानोंमें उसी क्रमसे उन्हीं मन्त्रोंसे 'एष ते बलिः' यह वाक्य अन्तमें जोड़कर प्रतिमन्त्र बलि देवे।

(२१) फिर पूर्वोक्त प्रकारसे अवनेजन करके तीन कंघियोंसे उन्हीं मन्त्रोंसे 'प्रलिखस्व' यह अन्तमें जोड़कर प्रतिबलि प्रतिमन्त्र प्रलेखन करे (रगड़कर चला दे)।

(२२) फिर उन्हीं मन्त्रोंसे 'अङ्क्ष्व' यह अन्तमें जोड़कर प्रतिबलि प्रतिमन्त्र अञ्जन छोड़ दे।

(२३) उसी प्रकार उन्हीं मन्त्रोंमें 'अनुलिम्पस्व' ऐसा वाक्य अन्तमें जोड़कर अनुलेपन देवे।

(२४) इसी प्रकार 'स्रजो नह्यस्व' ऐसा वाक्य मन्त्रके अन्तमें जोड़कर प्रतिमन्त्र प्रतिबलि पुष्पमाला देवे।

२५) अनन्तर बचे हुए सत्तूको वेदीपर छोड़कर जलके पात्रसे ऊपर जल बहा दे।

(२६) फिर खड़ा होकर 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इत्यादि तीन ऋचाओंसे सर्पोंका उपस्थान करे।

(२७) फिर यजमान जितने प्रदेशमें सर्पोंके प्रवेशको न चाहे, उतने देशमें घरके सब ओरसे तीन वार अविच्छिन्न जलकी धारा दे, एक बार 'अपश्वेतपदा जहि०' इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंसे दे और दो वार बिना मन्त्रके।

(२८) अनन्तर दर्वी और शूर्पको धोकर उल्कामें एक बार तपा-कर उल्काको रखनेवालेको सौंप दे।

(२९) इसके पश्चात् ब्रह्मा, यजमान और उल्का धारण करनेवाला तीनों शालाके द्वारदेशमें जाकर 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे जलसे अपना-अपना मार्जन करें।

(३०) फिर वे तीनों भर्जित यवों (धानाओं) को दाँतोंसे न चबाते हुए खावें। इसके पश्चात् ब्राह्मणभोजन करावे।

इति श्रवणाकर्म।



प्रतिदिन बलिहरणप्रयोग

(१) सत्तुओंका शेष सुरक्षित भाण्डमें रक्खे। सूर्यके अस्त हो जानेपर सत्तू, दर्वी और तीन कंघियाँ रखकर जलपात्र लेकर उल्काधारके सहित शालासे बाहर पूर्वोक्त रीतिसे आग्रहायणी (मार्गशीर्षकी पूर्णिमा) तक उपलेपनसे लेकर परिलेखनपर्यन्त बलिहरण करे। 'मान्तरागमत' ऐसा निषेध न होनेपर भी बीचसे कोई न जावे। दर्वीके मुखको ही धोवे।

इति अहरहर्बलिदानविधिः।



१४--अष्टकाकर्म

(पा० गृ० कां० ३ कं० ३)

(१) मार्गशीर्षकी पौर्णमासी (आग्रहायणी)के पश्चात् जो चार कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उनमें यथाक्रम चार अष्टकाकर्म होते हैं। अर्थात् कृष्णपक्षादि मासगणनाके अनुसार पौष कृष्ण अष्टमीको इन्द्रदेवताकी (ऐन्द्री) प्रथम अष्टका होती है । और उसके सम्बन्धसे ही उसके दूसरे दिन नवमीको अन्वष्टका भी होती है। इसी प्रकार माघ कृष्ण अष्टमीको विश्वदेव देवताओंकी (वैश्वदेवी) द्वितीया अष्टका होती है । तथा उसके दूसरे दिन उसीके सम्बन्धसे दूसरी अन्वष्टका होती है । एवं फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको प्रजापति देवताकी (प्राजापत्या) तीसरी अष्टका होती है । दूसरे दिन उसकी अन्वष्टका होती है । और उसी प्रकार चैत्र कृष्ण अष्टमीको पितृदेवताओंकी (पित्र्या) चौथी अष्टका होती है। और दूसरे दिन उसके सम्बन्धको अन्वष्टका होती है।

(२) ये अष्टकाकर्म संस्कारकर्म होनेसे एक बार ही होते हैं, प्रतिवर्ष नहीं किये जाते ।. शास्त्रमें चालीस संस्कार

कहे गये हैं। उनमें जिनका अभ्यास विहित है, वे ही पुनः-पुनः किये जाते हैं अन्य नहीं।

(३) अष्टकाशब्द कर्मका नाम होनेपर भी कालका बोधक भी है। अतएव ये कर्म कृष्ण अष्टमीको ही होते हैं।

पद्धति

(१) मार्गशीर्षकी पौर्णमासीके पश्चात् जो कृष्णाष्टमी आवे, उस दिन मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिकश्राद्ध करके आवसथ्य (गृह्य) अग्निमें कर्म करे।

(२) किन्हीं आचार्योंके मतमें अष्टकाकर्मोंमें आभ्युदयिक नहीं है।

'नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धम्।'

(३) ब्रह्मोपवेशन आदि प्राशनान्तकर्ममें विशेष—

तण्डुलोंके अनन्तर पहले गृह्य अग्निमें बनाये हुए अपूप (पूड़े) रक्खे और उसका प्रोक्षणकालमें प्रोक्षण करे।

(४) फिर आज्यभागान्तकर्म करके 'त्रिंशत्स्वसारः' इत्यादि दश आहुतियोंका होम करके 'शान्ता पृथिवी' इत्यादि चार मन्त्रोंसे स्थालीपाकसे चार आहुतियाँ करके अपूपसे 'इन्द्राय स्वाहा' इस मन्त्रसे एक आहुति होम करके स्थालीपाक और अपूप दोनोंसे स्विष्टकृत् होम करे।

(५) फिर महाव्याहृति आदि प्राजापत्यपर्यन्त होम करके प्राशन आदि समाप्तिपर्यन्त कर्म करे।

इति अष्टकाकर्म।



प्रथमान्वष्टका

जिस प्रकार अष्टकाकर्म चार होते हैं और वे संस्कार कर्म होनेसे जन्मभरमें एक बार ही होते हैं, उसी प्रकार अन्वष्टकाकर्म भी चार ही होते हैं, और एक बार ही। क्योंकि ये अष्टकाकर्मोंके साथ और उनके दूसरे-दूसरे दिन किये जाते हैं। इसीसे जब उनके प्रधान कर्म फिर नहीं होते, तो उनके होनेका कारण ही नहीं है। इसीसे उनके पुनः अनुष्ठानकी आपत्ति नहीं है।

और मासोंकी कृष्णादि पक्षोंकी गणनामें पौष कृष्णाष्टमीको प्रथम अष्टका होती है और उसके दूसरे दिन पौष कृष्णा नवमीको प्रथम अन्वष्टका होती है। इसी प्रकार माघ कृष्णाष्टमीको दूसरी अष्टका और माघ कृष्णा नवमीको दूसरी अन्वष्टका होती है, फाल्गुन कृष्णाष्टमीको तृतीय अष्टका तथा फाल्गुन कृष्णा नवमीको तीसरी अन्वष्टका होती है। एवम् आश्विन कृष्णा अष्टमीको चौथी अष्टका और आश्विन कृष्णा नवमीको चौथी अन्वष्टका होती है।

एवम् 'पिण्डपितृयज्ञवत्' (पिण्डपितृयज्ञके समान हो) इस अतिदेश वाक्यसे पिण्डपितृयज्ञके समान इस अन्वष्टका-कर्ममें नित्य वैश्वदेवकर्मके पश्चात् अपराह्न कालमें अपसव्य होकर नीवीबन्धन करके दक्षिण दिशामें मुख करके परदेसे ढके हुए अग्निके समीपवर्ती स्थानमें अग्निके उत्तरमें बैठकर अग्निकोणसे दक्षिण दिशातक अप्रदक्षिण क्रमसे दक्षिणाग्र कुशोंसे अग्निका परिस्तरण करके अग्निके पश्चिममें दक्षिणसंस्थ एक-एक करके

पात्रोंको रख दे । जैसे–स्रुव, चरुस्थाली अथवा स्रुक्, उदक, आज्य (घृत), मेक्षण, स्फ्य, उदकपात्र, सकृत् आच्छिन्न (कुश), शाक, दूध, सत्तू, अञ्जन, अनुलेपन, मालाएँ और सूत्र ।

पश्चात् अग्निपर शाक रख दे । पके हुए शाकको घृतसे अभिघारण (सिञ्चन) करके दक्षिण ओर उतारकर अग्निके पूर्व ओरसे लाकर उत्तर दिशामें रख दे ।

फिर बायें घुटनेको झुकाकर मेक्षणसे शाक लेकर—

(१) 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्रसे एक आहुति होम करके 'इदमग्नये कव्यवाहनाय' इस वाक्यसे त्याग करके फिर मेक्षण (छोटा-सा चाटू) से शाक लेकर—

(२) 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इस मन्त्रसे दूसरी आहुति देकर 'इदं सोमाय पितृमते' इस वाक्यसे त्याग करके मेक्षणको अग्निमें छोड़ करके अग्निके दक्षिण ओर अथवा पश्चिमकी ओर दक्षिणमुख बैठकर बायाँ घुटना झुकाकर भूमिका उपलेपन कर उसमें स्फ्यसे 'अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः' इस मन्त्रसे दक्षिणकी ओर रेखा खींचकर उसी प्रकार दूसरी रेखा करके जल-का स्पर्श करके—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकान् प्रणुदात्वस्मात् ॥

इस मन्त्रसे उल्मुक (गुदीड़ा) को पहली लकीरमें रखकर उसी प्रकार दूसरी रेखाके अग्रमें उल्मुक रखकर जलका स्पर्श करे ।

फिर जलपात्र लेकर पहली रेखापर पितृतीर्थसे 'अमुकगोत्र !

(अमुकसगोत्र !) अस्मत्पितः ! अमुकशर्मन् ! अवनेनिक्ष्व' इस वाक्यसे जल छोड़े। इसी प्रकार पितामह और प्रपितामहको अवनेजन देकर दूसरी रेखापर 'अमुकसगोत्रे ! अस्मन्मातः ! अमुकि देवि ! अवनेनिक्ष्व' इस वाक्यसे जल छोड़ दे। इसी प्रकार पितामही और प्रपितामहीको उसी रेखापर दक्षिण-दक्षिण अवनेजन जल दे।

पश्चात् उन रेखाओंपर एक साथ मूलको तोड़कर दक्षिणाग्र तीन-तीन कुशोंको रख दे। वहाँपर अवनेजनजलके क्रमसे 'अमुकसगोत्र ! अस्मत्पितः ! अमुकशर्मन् ! एतत्ते शाकं स्वधा नमः' इस वाक्यसे प्रथम रेखापर प्रथम अवनेजनके स्थानमें शाक-पिण्डको रख दे। इसी प्रकार पितामह और प्रपितामहको अवने-जनके स्थानमें शाकपिण्ड देवे।

फिर दूसरी रेखापर उसी प्रकार—'अमुकसगोत्रे ! अस्मन्मातः ! अमुकि देवि ! एतत्ते शाकं स्वधा नमः' इस वाक्यसे शाकपिण्डको प्रथम अवनेजनके स्थानमें रख दे। अनन्तर इसी प्रकार पितामही और प्रपितामहीको भी इनके अवनेजनके स्थानमें पिण्डदान करे।

प्रत्येक पिण्डदानके साथ क्रमसे 'इदं पित्रे' 'इदं पितामहाय' 'इदं प्रपितामहाय' 'इदं मात्रे' 'इदं पितामह्यै' 'इदं प्रपितामह्यै' इन त्यागवाक्योंसे त्याग करे।

यदि कामना हो तो माता आदिकोंके पिण्डोंके पास अवनेजन देकर सकृत् आच्छिन्न कुशोंको बिछाकर सन्तानरहित अपने आचार्य और शिष्योंके लिये भी यथाक्रम शाकपिण्डोंको दे।

और जो अपने सपिण्ड आदि प्राणी हों उनको भी पिण्डदान करे।

स्त्रियोंके पिण्डोंके समीप तीन गड्ढोंको बनाकर उनमें—

'अमुकसगोत्रे ! असावसौ ! अमुकि देवि ! दुग्धं पिब' इस वाक्यसे एक गड्ढेमें दुग्ध सींचकर उसी प्रकार अन्य दो गड्ढोंमें पितामही और प्रपितामहीको दुग्धदान करे।

इसी प्रकार सत्तू लेकर प्रथम अवट (गड्ढे) में—

'अमुकसगोत्रे ! अमुकि देवि ! तृप्यस्व' इस वाक्यसे सत्तू रख दे, इसी तरह अन्य दो अवटोंमें पितामही और प्रपितामही-को सत्तू देवे।

फिर 'अङ्क्ष्व' इस क्रियाको पूर्वोक्त वाक्योंके अन्तमें जोड़कर माता आदिकोंको अञ्जन देवे। इसी प्रकार 'अनुलिम्पस्व' इस वाक्यसे अनुलेपन और 'स्रजोऽपिनह्यस्व' इस वाक्यसे मालाएँ देकर 'अत्र पितरो मादयध्वम्' इस आधी ऋचाको जपकर पीछेकी ओर मुखकर वायुको धारणकर उत्तरमुख बैठकर उसी श्वाससे आवृत्तिकर 'अमीमदन्त पितरः' इस आधी ऋचाको जप करके पहलेके समान अवनेजन करके नीवीको खोलकर 'ॐ नमो वः'[1] इस मन्त्रसे प्रत्येक नमः पदके साथ अञ्जलि करे 'गृहान्नः'[2]

---

१. ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै। नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः॥

२. 'ॐ गृहान्नः पितरो दत्त'

इस मन्त्रसे आशिषोंकी प्रार्थना कर 'एतद्वः पितरो वासः' इस मन्त्रसे प्रत्येक पिण्डके ऊपर सूत्र देकर 'ऊर्जं[1] वहन्तीरमृतं घृतं पयः' इस मन्त्रसे पिण्डोंपर जलसेचन करके पिण्डोंको उठाकर उखलीमें रख दे। सूँघकर सकृत् आच्छिन्न कुशों और उल्मुकको अग्निमें डालकर जलका स्पर्शकर आचमन करे।

इति प्रथमान्वष्टका



अथ द्वितीयाष्टका

पौषमासकी पूर्णिमाके पश्चात् आनेवाली कृष्णा अष्टमीको विश्वेदेव देवताओंकी दूसरी अष्टका होती है। उसके प्रथम प्रयोगमें मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करके आवसथ्य अग्निमें कर्म करे। उसमें ब्रह्माके उपवेशन, प्रणीताप्रणयन और परिस्तरण करके पात्रोंकी स्थापना करे। पवित्रके छेदनके लिये तीन कुश, दो पवित्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, दो चरुस्थालियाँ, पाँच सम्मार्जन-कुश, सात उपयमनकुश, तीन समिधाएँ, स्रुव, आज्य, अष्टकाचरु-तण्डुल, शाकीय चरुतण्डुल, पहले ही आवसथ्य अग्निमें सिद्ध किया हुआ शाक और अन्य उपकल्पनीय वस्तु (जिनका कि प्रोक्षण नहीं होता) तथा छः हिरण्यशकल (सोनेके टुकड़े) रखे।

फिर—पवित्रकरण आदि प्रोक्षणपर्यन्त कर्मोंमें विशेष—

'विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि' इस मन्त्रसे शाकीय

---

१. ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्।

चरुतण्डुलोंका प्रोक्षण, आज्यनिर्वापके अनन्तर अष्टकाचरुपात्रमें तण्डुलोंको छोड़कर शाकीय चरुपात्रमें तण्डुलोंको छोड़े ।

अनन्तर ब्रह्मा आज्यको, स्वयं (यजमान) अष्टकाचरुको, अन्य या पत्नी शाकीय चरुको एक साथ अग्निमें उदक्संस्थ (उत्तरोत्तर क्रमसे) रक्खें । इसके अनन्तर पर्यग्निकरणसे लेकर प्रोक्षणीके उत्पवनतक कर्मको यजमान ही करे । इसके अनन्तर यजमान अपने आसनपर बैठकर उपयमन कुशोंको लेकर तीन समिधों-को अग्निमें आधान करके पर्युक्षण करके ब्रह्मासे अन्वारब्ध होकर दो आघारोंको होम करके अग्निसे उल्मुक लेकर उठकर प्रदक्षिणा करता हुआ शाक, आज्य और अग्निको तीन बार पर्यग्नि करके उल्मुकको अग्निमें डाल दे । फिर अप्रदक्षिणक्रम-से आकर यजमान पूर्णाहुतिके समान आज्यका संस्कार करके ब्रह्मासे अन्वारम्भके विना 'स्वाहा देवेभ्यः' इस मन्त्रसे एक आहुति होम करके 'इदं देवेभ्यः' इस वाक्यसे त्याग करके और पाँच आहुतियाँ चुपचाप दे । 'इदं प्रजापतये' इस वाक्यसे पाँचों आहुतियोंमें त्याग है । इसके अनन्तर ब्रह्मासे अन्वारब्ध होकर दो आज्यभागोंको होम करके 'त्रिंशत्स्वसारः' इत्यादि मन्त्रोंसे अनन्वारब्ध होकर दश आहुतियोंका होम करके अष्टकाचरुसे 'शान्ता पृथिवी' इत्यादि चार ऋचाओंसे चार आहुतियाँ देकर शाक-होमके लिये वायें हाथमें रक्खे हुए स्रुवमें आज्य छोड़कर सुवर्णका टुकड़ा रखकर शाकके दो अवदान लेकर फिर सुवर्णका टुकड़ा रक्खे, फिर दो बार उसपर घृत तर करके 'वह वपां जातवेदः

पितृभ्यः' इस मन्त्रसे अपसव्य और दक्षिणामुख होकर शाकहोम करें। 'इदं पितृभ्यः' इस वाक्यसे त्याग है। अथवा 'इदं जात-वेदसे' इस वाक्यसे त्याग करे।

फिर यज्ञोपवीती (सव्य) होकर जलका स्पर्श करके प्रधान होम करे।

जैसे—स्रुवमें आज्य रखकर सुवर्णखण्ड रखकर शाकसे दो अवदान लेकर स्रुवमें डालकर और स्थालीपाकसे एक वार अवदान लेकर ऊपर डालकर उसके ऊपर सुवर्णखण्ड रखकर एक वार उसपर घृत डालकर 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करे।

अनन्तर स्विष्टकृत्‌के अर्थ स्रुवमें घृत छोड़कर सुवर्णखण्ड रखकर शाकसे दो वार अवदान लेकर स्रुवमें करके दोनों चरुओंसे एक वार अवदान लेकर सुवर्णखण्ड रखकर दो वार अभिघारण (घृतसे तर) करके 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रसे होम करे। 'इदमग्नये स्विष्टकृते' इस वाक्यसे त्याग करे।

इसके अनन्तर महाव्याहृतिसे आरम्भकर प्राजापत्यपर्यन्त नव आहुतियोंका ब्रह्माके अन्वारम्भसे होम करके संस्रवका प्राशन करके ब्रह्माको शाकदक्षिणा देवे।

अनन्तर दूसरी स्मृतियोंके कथनानुसार पचीस ब्राह्मणोंको भोजनदान करे।

इति द्वितीयाष्टका



अथ द्वितीयान्वष्टका

इसी दूसरी अष्टकाके बचे हुए शाकसे दूसरे दिन अन्वष्टका-कर्म प्रथम अन्वष्टकाकर्मके समान ही करे।

इति द्वितीयान्वष्टका



अथ तृतीयाष्टका

माघकी पूर्णिमाके अनन्तर कृष्णा अष्टमीको प्रजापति देवता-की तीसरी अष्टका करे। वह प्रथम अष्टकाके प्रकारसे होती है। किन्तु वहाँ अपूपके स्थानमें कालशाकचरुको, जो आवसथ्य अग्निमें सिद्ध किया हुआ हो, आसादनकालमें रखकर प्रोक्षणकालमें प्रोक्षण करे फिर अपूपके स्थानमें 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे कालशाकका होम करे। शेष सब समान है। कालशाकके अभावमें वास्तुक (बथुआ) का ग्रहण करे।

इति तृतीयाष्टका



अथ तृतीयान्वष्टका

दूसरे दिन प्रथमके समान अन्वष्टकाकर्म होता है।

इति तृतीयान्वष्टका



अथ चतुर्थी अष्टका

प्रौष्ठपदी पूर्णिमा (भाद्रपदकी पौर्णमासी) के पश्चात् कृष्णा अष्टमीको चतुर्थी पितृदेवताओंकी अष्टका शाकद्रव्यसे होती है

इसीसे इसे शाकाष्टका भी कहते हैं। यह अष्टका प्रथम अष्टकाके समान होती है किन्तु इतना विशेष है। दो चरुस्थालियोंमें तण्डुलोंके अनन्तर कालशाकको स्थापन करे। कालशाकचरुसम्बन्धी आसादनसे होमपर्यन्त कर्म अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर करे। और सब कर्म सव्य तथा पूर्वाभिमुख होकर करे। कालशाकचरु-सम्बन्धी कर्म करके जलका स्पर्श करे। अपूपहोमके स्थानमें 'पितृभ्यः स्वाहा' इस मन्त्रसे शाकचरुकी एक आहुति दे।

इति चतुर्थी अष्टका



अथ चतुर्थी अन्वष्टका

दूसरे दिन अन्वष्टकाकर्म पूर्वके समान होता है।

इति चतुर्थी अन्वष्टका



१५--पृष्ठोदिविविधान

केशान्तसंस्कारके अनन्तर पत्नीरहित उत्सन्नाग्नि (जिसका अग्नि उच्छिन्न हो गया हो) अथवा निरग्नि (जिसने अग्निका आधान ही नहीं किया हो) अथवा ब्रह्मचारी हो मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करके 'अन्वग्निः' इस ऋचासे अग्नि लाकर पञ्चभूसंस्कार करके 'पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्' इस ऋचासे अग्निका स्थापन करके व्याहृतियोंसे तथा 'ताꣳसवितुः' 'तत्सवितुः' 'विश्वानि देव सवितः०' इन सावित्री (सविता देवताकी) ऋचाओंसे अग्निका प्रज्वालन करे ।

उस अग्निमें अक्षतहोम, पञ्चमहायज्ञ, पिण्डपितृयज्ञ, पक्षादिकर्म, और आग्रयण आदि पूर्वोक्त गृह्यसूत्रोक्त कर्म करे ।

इति पृष्टोदिविविधानम् ।



नोट—यह सरल प्रकार उपर्युक्त उन सब मनुष्योंके लिये है, जो गृह्य अग्निसे रहित हैं अथवा गृह्य अग्निके रखनेमें अधिकारी नहीं हैं अथवा रखनेमें असमर्थ हैं ।

इस प्रकारसे यह अग्निस्थापन सायंप्रातः नित्य ही करना होता है । इसमें भी गृह्योक्त सब कर्म किया जा सकता है । यह गौण पक्ष है ।

१६--नवान्नप्राशनपद्धति

शरद् और वसन्त ऋतुमें अनाहिताग्नि (गृह्याग्निमान्) का नवान्नप्राशनकर्म होता है। प्रथम प्रयोगमें मातृपूजा और आभ्युदयिक श्राद्ध करे। आवसथ्य अग्निमें यह कर्म होता है। ब्रह्माके उपवेशनसे प्राशनपर्यन्त कर्ममें यह विशेष है—नूतन स्थालीपाक पकाकर आज्यभागके अनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे दो आज्यकी आहुतियाँ होम करे।

'शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे शतं यो नः शरदो जीजानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा स्वाहा' इदमिन्द्राय।

'ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति तेषां योज्यानिमजीजिमावहात् तस्मै नो देवाः परिधत्तेह सर्वे स्वाहा' इदꣳसर्वेभ्यो देवेभ्यः।

इन्द्राग्नि, विश्वेदेव और द्यावापृथिवी—इनका स्थालीपाकसे होम होता है। ये आग्रायणकर्मके देवता हैं।

(१) 'इन्द्राग्निभ्याꣳस्वाहा' 'इदमिन्द्राग्निभ्याम्' इस वाक्यसे त्याग है।

(२) (धीरेसे मन्त्र पढ़े) विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। 'इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः' यह त्यागवाक्य है।

(३) (धीरेसे मन्त्र पढ़े) 'द्यावापृथिवीभ्याꣳस्वाहा' इदं द्यावापृथिवीभ्याम्। यह तीन आहुतियाँ देकर स्विष्टकृत् होम करे।

ब्रह्मासे अन्वारब्ध होकर—

स्विष्टमग्ने अभितत् पृणीहि विश्वांश्च देवः पृतना

अभिप्यक् । सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि, ज्योतिष्मद्धेह्यजरं न आयुः स्वाहा।

इस मन्त्रसे घृतकी आहुतिका होम करता है 'इदमग्नये' यह त्यागवाक्य है ।

अनन्तर स्थालीपाकसे ब्रह्मासे अन्वारब्ध होकर—

'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रसे आहुति दे। 'इदमग्नये स्विष्टकृते' यह त्यागवाक्य है ।

फिर पूर्वोक्त 'स्विष्टमग्ने' इस मन्त्रसे आज्याहुति होम करे। 'इदमग्नये' यह त्यागवाक्य है ।

इसके बाद महाव्याहृतियोंसे प्राजापत्य होमान्त होम करके संस्रवप्राशन करे, जिसका यह मन्त्र है—

अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः। शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः भद्रां नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वया वशेन समशीमहि त्वा स नो मयो भूः पितो आविशस्व शन्तोकाय तन्वै स्योने।

इस मन्त्रसे संस्रवप्राशन करे। अथवा 'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि' इस ऋचासे संस्रवका प्राशन करे। किन्तु यवान्नका प्राशन करे तो—

एतमुत्यं मधुना संयुतं यवꣳसरस्वत्या अधिवनाय चक्रुषुः इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।

इस मन्त्रसे संस्रवप्राशन करे। फिर ब्राह्मणभोजन हो ॥

इति नवान्नप्राशनपद्धतिः ।

आग्रहायणीकर्म

मार्गशीर्षकी पौर्णमासीमें आग्रहायणीकर्म होता है। उसमें प्रथम आरम्भके समय मातृपूजा और आभ्युदयिक श्राद्ध करके गृह्य अग्निमें कर्म करे। वहाँ ब्रह्माके उपवेशन आदि प्राशनान्त कर्ममें यह विशेष है—शूर्प (छाज), सत्तू, उल्मुक, जलपात्र, दर्वी (चाटू), तीन कंघे, अञ्जन, उपलेपन, मालाएँ—इन वस्तुओंको रखकर आज्यभागके अनन्तर 'अपश्वेतपदा जहि' इन दो मन्त्रोंसे दो घृतकी आहुतियाँ श्रवणाकर्मके समान देकर और चार आहुतियाँ नीचे दिये हुए मन्त्रोंसे प्रत्येक मन्त्रके साथ देवे। जैसे—

(१) **'यां जनाः प्रतिनन्दन्ति'** (२)**'संवत्सरस्य प्रतिमा०'** (३) **'संवत्सराय परिवत्सराय'** (४) **'ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः।'**

फिर स्थालीपाकसे चार आहुतियाँ दे जैसे—

(१) **'सोमाय स्वाहा' इदं सोमाय।**

(२) **'मृगशिरसे स्वाहा' इदं मृगशिरसे।**

(३) **'मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै स्वाहा' इदं मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै।**

(४) **'हेमन्ताय स्वाहा' इदं हेमन्ताय।**

फिर स्थालीपाकसे स्विष्टकृत् होम करके महाव्याहृति आदि दक्षिणान्त कर्मके अनन्तर बचे हुए सत्तूको छाजमें रखकर उप-निष्क्रमणसे आरम्भकर मार्जनपर्यन्त श्रवणाकर्मके समान कर्म करके मार्जनके पश्चात् 'उत्सृष्टो बलिः' यह वाक्य जोरसे उच्चारण करे। फिर उस रात्रिमें बच्छोंको उनकी माताओंके साथ मिला दे।

इत्याग्रहायणीकर्म।



स्रस्तरारोहणकर्म

वहाँ प्रथम प्रयोगमें मातृपूजा और आभ्युदयिक श्राद्ध करके स्रस्तर आस्तरण (फ़सके बिछौने) के योग्य घरमें सारे आवसथ्य अग्निको ले जाकर पञ्चभूसंस्कारपूर्वक स्थापन करके अग्निकी पश्चिम दिशामें कुशाओंसे स्रस्तर बिछावे । यह स्रस्तरका आस्तरण अग्निशालासे अन्य घरमें होना चाहिये । क्योंकि अग्नि-शालामें औपवसथ्यरात्रिके बिना शयनका निषेध है । उसके ऊपर नवीन एक बार धोया हुआ वस्त्र जिसकी दशा (छोर) उत्तरमें रहे बिछावे । अग्निकी दक्षिण दिशामें ब्रह्माको बैठाकर उत्तरमें जलपात्र, शमीशाखा, सीतालोष्ट और प्रस्तर रखकर स्रस्तरके पश्चिमके भागमें स्वामी बैठे, उसके उत्तरमें पत्नी, उसके उत्तरमें अपत्य (पुत्रादि) छोटे-छोटे बैठ जावें । वहाँ गृहपति अग्निको देखता हुआ जप करता है—'अयमग्निर्वीरतमः ।'

फिर अग्निके पश्चिममें बैठकर पूर्वकी ओर अञ्जलि करके ऋचाओंको पढ़े ।

(१) दैवीं नाव\ँस्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा\ँस्व-स्तये० ।

(२) सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम्० ।

(३) आनो मित्रावरुणाः ।

फिर 'ब्रह्मन् प्रत्यवरोहामि' इस मन्त्रसे ब्रह्मासे अनुज्ञा लेवे। अनन्तर 'प्रत्यवरोहध्वम्' इस मन्त्रके द्वारा ब्रह्मासे प्रत्यनुज्ञात होकर स्नान कर अहतवस्त्र धारण कर 'आयुः कीर्तिर्यशो बलमन्नाद्यं प्रजाम्' इस मन्त्रसे स्रस्तरके ऊपर चढ़ जावें। स्त्रियाँ भी मन्त्रसे ही आरोहण करें।

आरोहण करके उनमें जो उपनीत हों वे 'सुहेमन्तः सुवसन्तः' इस मन्त्रको जपते हैं। इसके पश्चात् 'स्योना पृथिवी' इस ऋचाको पढ़कर स्वामी आदि सब स्त्रियाँ उपनीत और अनुपनीत सभी उक्त क्रमके अनुसार दाहिनी करवटसे पूर्वकी ओर शिर करके सो जावें। उसके पीछे 'उदायुषा' इत्यादि मन्त्रसे सब उठ खड़े हों। फिर स्रस्तरसे उतरकर ब्रह्माकी अनुज्ञा आरोहण और प्रत्यवरोहणसे युक्त जप, संवेशन और उत्थान दो बार ही करें। इसके अनन्तर चार मास पृथ्वीपर शयन करें। इच्छा हो तो शय्यापर भी सोवें। फिर गृह्य अग्निको पञ्चभूसंस्कारपूर्वक उसके सदाके स्थानमें ही स्थापन कर दें।

इति स्रस्तरारोहणकर्म।



स्वाध्यायपद्धति

(ब्रह्मयज्ञ)

(१) आसनके ऊपर प्रागग्रकुशोंको रखकर उनके ऊपर पूर्वमुख होकर बैठे। दोनों हाथोंसे दर्भोको लेकर विनियोग पढ़े।

(२) 'इषे त्वा' इत्यादि 'खं ब्रह्म' पर्यन्त माध्यन्दिनीय वाजसनेयक यजुर्वेदाम्नायका विवस्वान् ऋषि, वायु देवता, गायत्री आदि सारे छन्द ब्रह्मयज्ञमें विनियोग हैं।

प्रणव व्याहृतियाँ और गायत्रीको आम्नायस्वरसे पढ़कर 'इषे त्वोर्जेत्वा०' यहाँसे वेदका आरम्भ करके अनुवाक-अनुवाक अथवा एक-एक अध्याय यद्वा एक-एक यजुःका नित्य पाठ करता हुआ संहिताका स्वाध्याय करे। ऐसा करता हुआ संहिताको समाप्त कर दे। इसी प्रकार ब्राह्मणभागके एक-एक अध्याय अथवा एक-एक ब्राह्मणका स्वाध्याय करता हुआ उसको समाप्त करे। अन्तमें प्रणवका उच्चारण करे। उक्त विधिसे यथा-शक्ति प्रतिदिन स्वाध्याय करता हुआ मन्त्रभाग और ब्राह्मण-भागकी समाप्ति करके फिर इसी प्रकारसे आरम्भ और समाप्ति करे। प्रणव, व्याहृतियाँ और गायत्रीपूर्वक प्रतिदिन पढ़े।

(३) इसी प्रकार इतिहास, पुराण आदिका भी स्वाध्याय करे। यह प्रकार ब्रह्मयज्ञसिद्धिके लिये जप करनेका है। 'उसी स्वाध्यायमें आध्या-त्मिकी श्रुतियोंका पाठ करे।' ऐसा योगीश्वरने पृथक् कहा है।

(४) स्वाध्यायकर्ममें अनध्याय नहीं है। 'नास्ति नित्येष्वनध्यायः' नित्यकर्मोंमें अनध्याय नहीं है, ऐसा वचन है।

(५) ब्रह्मयज्ञकर्म नित्य है ॥ इति ॥

मातृपूजाविधि

(१) सब संस्कारों और आवसथ्याधान आदि कर्मोंमें मातृपूजा और नान्दीश्राद्ध प्रथम कर्तव्य होता है, अतएव यथाक्रम दोनों पद्धतियाँ भी संग्रह कर दी जाती हैं।

(२) प्रातःकाल स्नान करके तथा नित्यकर्म करके दीवार या काष्ठके पट्टेपर चूर्ण आदिसे १७ कोष्ठ बनाकर गणपति-सहित सोलह मातृकाओंकी तथा मृन्मयी श्रीकी पूजा करे। यदि मृन्मयीका सम्भव न हो तो श्रीकी भी एक कोष्ठकमें पूजा करे।

(३) गौरी १ पद्मा २ शची ३ मेधा ४ सावित्री ५ विजया ६ जया ७ देवसेना ८ स्वधा ९ स्वाहा १० मातरः ११ लोकमातरः १२ हृष्टिः १३ पुष्टिः १४ तुष्टिः १५ आत्मकुलदेवता १६ ये सोलह मातृकाएँ हैं।

(४) वहाँ यह क्रम है—आचमन करके पूर्वको मुख करके बैठे। प्रथम कोष्ठकसे आरम्भ करके क्रमसे—

(१) गणपतिरसि (२) गौर्यसि (३) पद्मासि (४) शच्यसि (५) मेधासि (६) सावित्र्यसि (७) विजयासि (८) जयासि (९) देवसेनासि (१०) स्वधासि (११)स्वाहासि (१२) मातरः स्थ (१३) लोकमातरः स्थ (१४) हृष्टिरसि (१५) पुष्टिरसि (१६) तुष्टिरसि (१७) आत्मकुलदेवतासि (१८) श्रीरसि

ऐसे मन्त्रोंका उच्चारण करके अक्षतोंसे 'ॐ भूर्भुवः स्वः गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ' इस प्रकार पद्धतिमें निर्दिष्ट ओंकार और महाव्याहृतिपूर्वक मन्त्रोंसे आवाहन तथा स्थापन करके—

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामोꣳप्रतिष्ठ।

इस मन्त्रसे अक्षतोंको छोड़कर एक साथ ही सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करे।

(४) अनन्तर पाद्य आदि लेकर प्रथमसे आरम्भ कर—

'एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि'

इस वाक्यसे निवेदन करे।

(५) **'ॐ गणपतये नमः'**

इस मन्त्रसे गणपतिका अनुलेपन तथा पुष्प अर्पण कर तीन बार पूजन करे। एवं गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, ताम्बूल और नैवेद्य अर्पण करे।

(६) इसी प्रकार 'ॐ गौर्यै नमः' इत्यादि मन्त्रोंसे पाद्य आदिसे सोलह मातृकाओं और श्रीका पूजन करे।

(७) फिर 'गणपतिसहिताः षोडश मातरः क्षमध्वम्' इस मन्त्रसे विसर्जन करे।

(८) अनन्तर 'श्रीर्मयि रमस्व' इस मन्त्रसे श्रीकी प्रार्थना करे।

(९) इसके पश्चात् घृतसे भित्तिपर पाँच या सात रेखा उत्तरोत्तर क्रमसे करे। ('वसोः पवित्रमसि' इत्यादि मन्त्रसे घृतधारा करे।)

संक्षिप्त नान्दीश्राद्ध

(१) आचमन और प्राणायाम करके ऐसा संकल्प करे ।

पूर्वसङ्कल्पिते कर्त्तव्ये अस्मिन् कर्मणि साङ्कल्पिक-नान्दीश्राद्धमहं करिष्ये ॥

(२) एतच्छ्राद्धीयाग्रभागफलपुष्पाणि यज्ञेश्वराय विष्णवे नमः ।

इस वाक्यसे सामग्रीको नारायणके अर्पण करे ।

(३) यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य-
भोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥

इस श्लोकको पढ़े ।

(४) इस कर्ममें सव्र कर्म सव्यसे होता है। तथा देवकार्यके समान सब्र क्रियाएँ होती हैं। कुश सीधे पूर्वाग्र रक्खे जाते हैं। चार स्थानोंमें तीन-तीन कुश उत्तरोत्तर क्रमसे रख दे। प्रथम तीन कुश पूर्वमुख होकर पूर्वाग्र रख दे। यह प्रथम आसन विश्वदेवोंका है, दूसरा आसन माता, पितामही और प्रपितामहीका है, तीसरा पिता, पितामह और प्रपितामहका और चतुर्थ आसन सपत्नीक मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहका है।

(५) (क) प्रथम आसनपर—

सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम् ॐ तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नवाव॥

जल छोड़ दे। (आसन दान करे)

(ख) नान्दीश्राद्धे अमुकगोत्राणां मातृपितामही-प्रपितामहीनां नान्दीमुखीनां ॐ भूर्भुवः स्वः इद-मासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः नान्दी-श्राद्धे क्षणौ क्रियेतां तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवः॥

इस वाक्यसे माता आदि तीनोंको आसन दान करे।

(ग) नान्दीश्राद्धे अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपिता-महानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः। नान्दीश्राद्धे०॥

इस वाक्यसे पिता आदि तीनोंको आसन देवे।

(घ) नान्दीश्राद्धे द्वितीयगोत्राणां, मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां नान्दीमुखानां ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे मातामह आदि तीनोंको आसन दे।

पाद्य आदिसे पूजा

(६) (क) सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥

इस वाक्यसे पुटकमें जल लेकर प्रथम आसनपर पाद्य देवे।

(ख) अमुकगोत्रा मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे दूसरे आसनपर पाद्य दान करे।

(ग) अमुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे तीसरे आसनपर पिता आदि तीनोंको पाद्यदान करे।

(घ) द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे चतुर्थ आसनपर पाद्यदान करे।

(७) (क) सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॐभूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

इस वाक्यसे प्रथम आसनपर विश्वेदेवोंको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, ताम्बूल, यज्ञोपवीत और वस्त्र देवे।

(ख) अमुकगोत्राभ्यो मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे माता आदि तीनोंको दूसरे आसनपर गन्ध आदिका दान करे।

(ग) अमुकगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे तीसरे आसनपर पिता आदि तीनोंको गन्ध आदि दान करे।

(घ) द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः० ॥

इत्यादि वाक्यसे सपत्नीक मातामह आदि तीनोंको गन्ध आदि दान करे।

भोजनदान

(८) (क) सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तम् (दास्यमानम्) अन्नममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥

इस वाक्यसे प्रथम आसनके सामने अन्नदान करे।

(ख) अमुकगोत्रा मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं० ॥

इत्यादि वाक्यसे दूसरे आसनके सामने माता आदिकोंको अन्नदान करे।

(ग) अमुकगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे पिता आदिको अन्नदान करे।

(घ) द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः० ॥

इत्यादि वाक्यसे सपत्नीक मातामह आदिको चतुर्थ आसनके सामने अन्नदान करे।

(९) 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः०' ॥

इस मन्त्रको पढ़े।

दक्षिणादान

(१०) (क) अस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः, अमुकगोत्राभ्यो मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यः, अमुकगोत्रेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः, द्वितीयगोत्रेभ्यो मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ॥

इस वाक्यसे दक्षिणा दान करे।

(११) माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः।
एते भवन्तु मे प्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम्॥

'इडामग्ने पुरुदंसꣳ सनिङ्गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध। स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे।' इति वाद्यम्।

'इडाऽग्नेऽअधिधारया रयिम्मास्वान्निष्कन्पूर्वचितो निकारिणः क्षत्रमग्ने स यममस्तु तुभ्यमुपसुता वर्तंतां तेऽअनिग्रतः॥'

नान्दीश्राद्धं सम्पन्नं सुसम्पन्नम्॥

अस्य नान्दीश्राद्धस्य कर्माङ्गदेवताः प्रीयन्ताम्।

॥ इति नान्दीश्राद्धम्॥



श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुर

की

पुस्तकोंकी सूची

ज्येष्ठ १९९४



मिलनेका पता—
गीताप्रेस, गोरखपुर

इन्हीं पुस्तकोंका विशेष विवरण और विक्रेताओंके नाम-पता जाननेके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाब देने या माल भेजनेमें बहुत दिक्कत होगी। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) अगर ज्यादा किताबें मालगाड़ी या पार्सलसे मँगानी हों तो रेलवे स्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके भयसे एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्री-खर्च जोड़कर टिकट भेजें।

(४) एक रुपयेसे कमकी पुस्तकें बुकपोस्टसे मँगवानेवाले सज्जन ।) तथा रजिस्ट्रीसे मँगवानेवाले ।=) (पुस्तकोंके मूल्यसे) अधिक भेजें। बुकपोस्टका पैकेट प्रायः गुम हो जाया करता है; अतः इस प्रकार खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

कमीशन-नियम

समान व्यवहारके नाते छोटे-बड़े सभी ग्राहकोंको कमीशन एक चौथाई दिया जायगा। ३०) की पुस्तकें लेनेसे ग्राहकोंके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री-डिलीवरी दी जायगी। परन्तु थोड़ी अन्य प्रकारकी पुस्तकें भी लेनी होंगी, केवल गीता नहीं। ३०) की पुस्तकें लेनेवाले सज्जनोंमेंसे यदि कोई जल्दीके कारण रेलपार्सलसे पुस्तकें मँगवावेंगे तो उनको केवल आधा महसूल बाद दिया जायगा। फ्री-डिलीवरीमें बिल्टीपर लगनेवाला डाकखर्च, रजिस्ट्रीखर्च, मनीआर्डरकी फीस या बैंकचार्ज शामिल नहीं होंगे, ग्राहकोंको अलग देने होंगे। नवीन रेटके अनुसार चित्रोंके दाम कम हो जानेके कारण पुस्तकोंके साथ चित्रोंकी फ्री-डिलीवरी नहीं दी जायगी। पुस्तकोंके साथ चित्र मँगानेवालोंको चित्रोंके कारण जो विशेष भाड़ा लगेगा वह देना होगा।

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-सूची

श्रीमद्भगवद्गीता-[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है । श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है । पृष्ठ ५१९, ३ चित्र, मूल्य साधारण जिल्द २॥) बढ़िया कपड़ेकी जिल्द २।

श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति-सहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, बहुरंगे ४ चित्र, अबतक ६६००० छप चुकी है, मूल्य ... १।)

श्रीमद्भगवद्गीता-गुजराती टीका, गीता नं० २ की तरह, मूल्य ... १।)

श्रीमद्भगवद्गीता-मराठी टीका, हिन्दीकी १।) वाली नं०२ के समान मूल्य१।)

श्रीमद्भगवद्गीता-प्रायः सभी विषय१।) वाली नं०२ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, २२००० छप चुकी, मू०॥≈) स०॥।≡)

श्रीमद्भगवद्गीता-बंगला टीका, गीता नं० ५ की तरह, मूल्य ... ॥।)

श्रीमद्भगवद्गीता-श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, साइज मझोला, मोटा टाइप, गीता नं०११की तरह पृष्ठ३१६, मूल्य॥)स०॥≈)

श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।-) सजिल्द ।≈)

श्रीमद्भगवद्गीता-केवल भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं । अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, ३०००० छप चुकी है, मूल्य ।) सजिल्द ... ।=)

पञ्चरत्न गीता-मूल, सचित्र, मोटे टाइप, पृष्ठ ३२८, मूल्य सजिल्द ।)

श्रीमद्भगवद्गीता-साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सभी विषय ॥) वाली गीता नं० ७ के समान, सचित्र, पृष्ठ ३५२, ४८०००० छप चुकी, मूल्य =)॥ सजिल्द ≈)॥

गीता-मूल ताबीजी, साइज २×२॥ इञ्च, ७५००० छप चुकी, सजिल्द =)

गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, ११९१०० छप चुकी, सचित्र स० -)॥

श्रीमद्भगवद्गीता-७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण, मूल्य -)

गीताडायरी सन् १९३७ पञ्चाङ्गसहित, पृ० ४५० मू० ।) स० ।-)

ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५०, मूल्य ≈)

केनोपनिषद्-सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मूल्य ॥)

कठोपनिषद्—सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७२, मूल्य ॥-)
मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३२, मूल्य ।ॐ)
प्रश्नोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३०, मूल्य ।ॐ)
उपरोक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) हिन्दी-अनुवाद और शाङ्करभाष्यसहित, मूल्य ··· २।-)
माण्डूक्योपनिषद्—श्रीगौडपादीय कारिकासहित, सानुवाद, शांकर-भाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ३००, मूल्य ··· ··· १)
तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृ० २५२, मू० ॥-)
ऐतरेयोपनिषद्—सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १०४, मू० ।=)
उपरोक्त तीनों उपनिषद् एक जिल्दमें स० (उपनिषद्-भाष्य खण्ड २) मू० २।=)
श्रीविष्णुपुराण—हिन्दी-अनुवादसहित, ८ चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, पृष्ठ ५४८, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ··· ··· २॥)
अध्यात्मरामायण—सानुवाद, ८ चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, दूसरा संस्करण छप गया है, मू० १॥) सजिल्द २)
प्रेम-योग—सचित्र, लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, ११००० छप चुका है, मूल्य १।) सजिल्द १॥)
भक्तियोग—सचित्र, भक्तिका सविस्तार वर्णन है, पृष्ठ ७०८, मूल्य ··· १=)
श्रीतुकाराम-चरित्र—९ चित्र, पृष्ठ ६९४, मूल्य १ॐ) सजिल्द १॥)
भागवतरत्न प्रह्लाद—३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द १।)
विनय-पत्रिका—गो० तुलसीदासजीकृत, सरल हिन्दी-भावार्थसहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, तीसरा संस्करण, १५००० छप चुकी है, संशोधित, परिवर्द्धित, पृष्ठ ४८०, मूल्य १) सजिल्द १।)
गीतावली—गो० तुलसीदासकृत, सानुवाद, अनु०-श्रीमुनिलालजी, इसमें रामायणकी तरह ७ काण्डोंमें श्रीरामकी लीलाओंका भजनोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, पृष्ठ ४६०, ८ चित्र, मूल्य १) सजिल्द १।)
श्रीकृष्ण-विज्ञान—श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद, दो चित्र, पृष्ठ २७५, मोटा कागज, मूल्य ॥) सजिल्द १)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)-सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत जीवनी, पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥=) सजिल्द १=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)-सचित्र, पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ, पृष्ठ ४५०, ९ चित्र, मूल्य १=) सजिल्द १।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली-(खण्ड ३)-पृष्ठ ३८४, ११ चित्र, मूल्य १) सजिल्द १।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली-(खण्ड ४)-पृष्ठ २२४, १४ चित्र, मूल्य ॥=) सजिल्द ॥।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली-(खण्ड ५)-पृष्ठ २८०, १० चित्र,मू० ॥।)स० १)

मुमुक्षुसर्वस्वसार-भाषाटीकासहित, पृष्ठ ४१४, मूल्य ॥।-) सजिल्द १-)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग १)-सचित्र, ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, इसके मननसे धर्ममें श्रद्धा, भगवान्‌में प्रेम और विश्वास एवं नित्यके बर्तावमें सत्य व्यवहार और सबसे प्रेम एवं शान्तिकी प्राप्ति होती है। ११००० छप चुकी,पृ० ३५०, मूल्य ॥=) स० ॥।-)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग १)-(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ४४८, प्रचारार्थ मूल्य ।-) सजिल्द ।=)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग २)-सचित्र, इसमें लोक और परलोकके सुख-साधनकी राह बतानेवाले सुविचारपूर्ण सुन्दर-सुन्दर लेखोंका अति उत्तम संग्रह है। पृष्ठ ६३२, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग २)-(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ७५०, प्रचारार्थ मूल्य ।=) सजिल्द ॥)

पूजाके फूल-नयी पुस्तक, सचित्र, पृष्ठ ४१४, मूल्य ... ॥।-)

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन-दक्षिणके प्रसिद्ध, सबसे अधिक प्रभावशाली भक्त('श्रीज्ञानेश्वरी गीता'के कर्ता) की जीवनदायिनी जीवनी और उनके उपदेशोंका नमूना, सचित्र, पृष्ठ ३५६, मू०॥।-)

श्रीमद्भागवतान्तर्गत एकादश स्कन्ध-यह स्कन्ध बहुत ही उपदेशपूर्ण है, सचित्र, सानुवाद,पृ० ४२०, ८२५० छप चुका,मू० केवल॥।)स० १)

देवर्षि नारद-लोक-प्रसिद्ध नारदजीकी विस्तृत जीवनी, २ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य ॥।) सजिल्द १)

शरणागतिरहस्य-'शरण'का विस्तृत विवेचन,सचित्र, पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥≈)

विष्णुसहस्रनाम-शांकरभाष्य हिन्दी टीकासहित, सचित्र, भाष्यके सामने ही उसका अर्थ छापा गया है। पृष्ठ २७५, मूल्य ... ॥=)

शतपञ्च चौपाई-गो० तुलसी०की रामा० से,सानुवाद,सचित्र,पृ०२४०, ॥=)

सूक्ति-सुधाकर—सुन्दर श्लोकसंग्रह, सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २७६, मूल्य ।।=)
आनन्दमार्ग—आनन्दमय लेखसंग्रह, सचित्र, पृष्ठ ३२४, मूल्य ... ।।-)
श्रुतिरत्नावली—सचित्र, संपा० स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, एक पेजमें चुनी हुई मूल श्रुतियाँ और उसके सामनेके पेजमें उनके अर्थ हैं, पृष्ठ २८४, मूल्य ... ... ।।)
स्तोत्ररत्नावली—चुने हुए स्तोत्र, हिन्दी-अनुवादसहित, ४चित्र, पृ० २३०, मू० ।।)
दिनचर्या—(सचित्र) उठनेसे सोनेतक करनेयोग्य धार्मिक बातोंका वर्णन, नित्यपाठके योग्य स्तोत्र और भजनोंसहित, पृ० २३०, मू० ।।)
तुलसीदल—लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, इसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, विद्वान्-मूर्ख, भक्त-ज्ञानी, गृहस्थी-त्यागी, कला और साहित्यप्रेमी सबके लिये कुछ-न-कुछ उन्नतिका मार्ग मिल सकता है । सुन्दर लेख-संग्रह, पृष्ठ २९२, सचित्र, प्रचारार्थ मूल्य ।।) सजिल्द ।।ॾ)
श्रीएकनाथ-चरित्र—ले० हरिभक्तिपरायण पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, भाषान्तरकार—पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे, हिन्दीमें एकनाथ महाराजकी जीवनी अभीतक नहीं देखी, पृष्ठ २४०, मूल्य ... ... ।।)
नैवेद्य—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका सचित्र, नया सुन्दर ग्रन्थ, पृष्ठ ३५०, मूल्य ।।) सजिल्द ।।ॾ)
श्रीरामकृष्ण परमहंस—(५ चित्र) इसमें परमहंसजीकी जीवनी और ज्ञानभरे उपदेशोंका संग्रह है, १०२५० छप चुकी, पृष्ठ २५०, मूल्य ।ॾ)
भक्त-भारती—७ चित्र, कवितामें ७ भक्तोंकी सरल कथाएँ, मूल्य ... ।ॾ)
धूपदीप—लेखक—श्री'माधव' जी, पृष्ठ २४०, सचित्र, मूल्य ... ।ॾ)
तत्त्वविचार—तत्त्वमय लेखसंग्रह, सचित्र, पृष्ठ २०५, मूल्य ... ।=)
उपनिषदोंके चौदह रत्न—सरल भाषामें, पृष्ठ १००, चित्र १०, मूल्य ।=)
लघुसिद्धान्तकौमुदी—परीक्षोपयोगी सटिप्पण, पृष्ठ ३५०, मूल्य ।=)
विवेक-चूडामणि—स्वा० शंकरकृत(सानुवाद, सचित्र) पृ० २२४, मू० ।-)
गीतामें भक्तियोग—सचित्र, श्रीवियोगी हरिजीकी व्याख्या, मूल्य ।-)
भक्त बालक—गोविन्द, मोहन आदि बालक भक्तोंकी ५ कथाएँ हैं, मूल्य ।-)
भक्त नारी—स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी मीरा, शबरी आदिकी कथाएँ हैं, पृष्ठ ८०, ६ चित्र, मूल्य ।-)
भक्त-पञ्चरत्न—यह भक्त रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच कथाओंकी पुस्तक सद्गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है, पृष्ठ ९८, ६ चित्र, मूल्य ।-)

आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव, अम्बरीष, भीष्म, अर्जुन, सुदामा आदिकी ७ कथाएँ, पृष्ठ ११२, ७ चित्र, मूल्य ... ।-)

भक्त-सप्तरत्न—दामा, रघु आदिकी मनोहर गाथाएँ, पृ० १०६, ७चित्र, मू०।-)

भक्त-चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि६भक्तोंकी मीठी-मीठी बातें, ७चित्र, मू०।-)

भक्त-कुसुम—छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सबके योग्य प्रेमभक्तिपूर्ण जगन्नाथ, हिम्मतदास आदिकी ६ कथाएँ, पृष्ठ ९१, ६ चित्र, मूल्य ।-)

प्रेमी भक्त—बिल्वमंगल, जयदेव, रूप-सनातन आदि, पृ० १०३, ७चित्र मू०।-)

प्रेम-दर्शन—नारदरचित भक्तिसूत्र, विस्तृत टीकासहित, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकृत, सचित्र, पृष्ठ २००, मूल्य ... ।-)

गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला—हिन्दी-संस्कृत, कर्मकाण्ड, पृष्ठ १८२, मूल्य ।-)

यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ—एलिज़ाबेथ, गेयों आदि ४, पृ० ९२, ३ चित्र मूल्य ।)

व्रजकी झाँकी—वर्णनसहित, ९२५० छप चुकी, ५६ चित्र, मूल्य ... ।)

श्रीबदरी-केदारकी झाँकी—वर्णन, नकशासहित, सचित्र, मूल्य ... ।)

परमार्थ-पत्रावली—श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५१ कल्याणकारी पत्रोंका स्वर्णसंग्रह, पृष्ठ १४४, एण्टिक कागज, सचित्र, प्रचारार्थ मू० ।)

ज्ञानयोग—श्रीभवानीशंकरजीके ज्ञानयोगसम्बन्धी उपदेश, पृष्ठ १२५, मूल्य ।)

कल्याणकुञ्ज—मननीय तरंग-संग्रह, सचित्र, पृष्ठ १६४, मूल्य ... ।)

प्रबोध-सुधाकर—स्वा० शंकरकृत, सानुवाद, सचित्र, इसमें विषयभोगोंकी तुच्छता दिखाते हुए आत्मसिद्धिके उपाय बताये गये हैं, पृ० ८० मू० ≡)॥

मानव-धर्म—ले०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ११२, मूल्य ... ≡)

प्रयागमाहात्म्य—वर्णन, परिक्रमासहित १६ चित्र, पृष्ठ ६४, मूल्य ... =)॥

माघमकरप्रयागस्नानमाहात्म्य—(सचित्र) पृष्ठ ९४, मूल्य ... =)॥

गीता-निबन्धावली—गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये बहुत उपयोगी है, गीता-परीक्षाकी मध्यमाकी पढ़ाईमें रक्खी गयी है, मूल्य ... =)॥

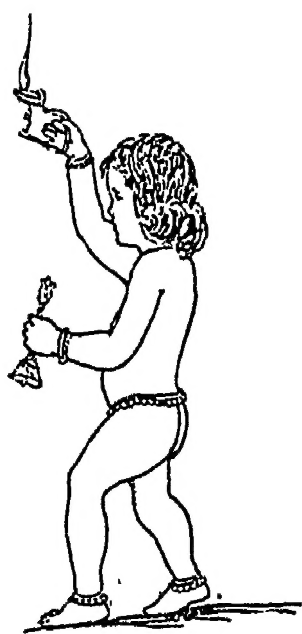
साधन-पथ—ले०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ ७२, मू० =)॥

वेदान्त-छन्दावली—ले०—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, सचित्र, पृ० ७४, मू० =)॥

अपरोक्षानुभूति—स्वा० शंकरकृत, सानुवाद, पृ० ४८, सचित्र, मूल्य =)॥

मनन-माला—यह भावुक भक्तोंके बड़े कामकी चीज है, सचित्र मूल्य =)॥

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर





पता—गीताप्रेस, गोरखपुर ।